# श्रीमाँ का प्रतीक

## आध्यात्मिक व्याख्या और महत्व

# श्रीमाँ का प्रतीक
## आध्यात्मिक व्याख्या और महत्व

श्रीअरविन्द के १५० वें जन्म समारोह के अवसर पर श्रीअरविन्द सोसाइटी,
जयपुर केन्द्र द्वारा प्रस्तुत

श्रीमाँ तथा श्रीअरविन्द की रचनाओं से संकलित

श्रीअरविन्द डिवाइन मैनिफेस्टेशन ऐण्ड एजूकेशन ट्रस्ट
सी-136, ए-2, गार्डेन व्यू, मंगल मार्ग
माथुर कॉलोनी, बापू नगर
जयपुर - 302015
राजस्थान

ई-मेलः sasjaipur@aurosociety.org
फोनः 9829255271,9462294899

श्रीमाँ का प्रतीक
*(श्रीमाँ तथा श्रीअरविन्द की रचनाओं से संकलित)*

प्रथम संस्करण : अगस्त २०२२

© श्रीअरविन्द सोसाइटी, जयपुर शाखा
श्रीअरविन्द डिवाइन मैनिफेस्टेशन ऐण्ड एजूकेशन ट्रस्ट
सी-136, ए-2, गार्डेन व्यू, मंगल मार्ग
माथुर कॉलोनी, बापू नगर
जयपुर - 302015
राजस्थान

*प्रकाशक :* श्रीअरविन्द डिवाइन मैनिफेस्टेशन ऐण्ड एजूकेशन ट्रस्ट, जयपुर

*मुद्रक :* श्रीअरविन्द आश्रम प्रेस, पांडिचेरी

ई-मेल : sasjaipur@aurosociety.org
फोन : 9829255271, 9462294899

मूल्य : रु.200

# सूचीपत्र


1. प्रतीक क्या है? 5
2. श्रीमाँ का प्रतीक 6
3. परम जननी 7
4. श्रीमाँ के चार महान स्वरूप 12
   - महेश्वरी
   - महाकाली
   - महालक्ष्मी
   - महासरस्वती
5. प्रतीक के बारह सद्‌गुण 27
   1. सच्चाई-निष्कपटता 28
   2. विनम्रता 49
   3. कृतज्ञता 56
   4. अध्यवसाय 67
   5. अभीप्सा 74
   6. ग्रहणशीलता 101
   7. प्रगति 103
   8. साहस 118
   9. साधुता 135
   10. उदारता 145
   11. समता 160
   12. शान्ति 170

realisation

# प्रतीक क्या है?

प्रतीक, मेरी समझ में, एक स्तर का एक रूप है, जो दूसरे स्तर के किसी सत्य को दर्शाता है। उदाहरणार्थ, झण्डा राष्ट्र का प्रतीक है। किन्तु साधारणतया, सभी रूप प्रतीक होते हैं। हमारा यह शरीर हमारी यथार्थ सत्ता का प्रतीक है, और प्रत्येक वस्तु किसी उच्चतर सत्य का प्रतीक होती है। हां, प्रतीक विभिन्न प्रकार के होते हैं:

1. रूढ़ प्रतीकः वे जो वैदिक ऋषियों ने अपने आस-पास की वस्तुओं से गढ़े थे। गाय प्रकाश का अर्थ देती थी, क्योंकि एक ही शब्द 'गो' रश्मि और गाय—दोनों का द्योतक था, और क्योंकि गाय उनकी अमूल्यतम सम्पत्ति थी, जो उनका भरण-पोषण करती थी और जिसके चुराये अथवा छिपाये जाने का सदैव भय रहता था। किन्तु इस प्रकार का प्रतीक एक बार सृष्ट हुआ नहीं कि जीवन्त हो उठता है।...

2. जिन्हें हम जीवन-प्रतीक कह सकते हैं, वे कृत्रिमतया नहीं चुने जाते अथवा वे सचेतन रूप से मन द्वारा गढ़े-समझे नहीं जाते, बल्कि वे दैनिक जीवन से अथवा उन परिस्थितियों से स्वाभाविकतया विकसित होते हैं, जो हमारे जीवन के साधारण मार्ग को प्रभावित करती हैं। प्राचीन लोगों के लिए पर्वत योग-मार्ग का प्रतीक था—स्तर के ऊपर स्तर, शिखर के ऊपर शिखर।...

3. वे प्रतीक जिनमें एक अपना सहज औचित्य और शक्ति होती है। आकाश अथवा आकाशरूपी देश निःसीम, सर्वव्यापी सनातन ब्रह्म का प्रतीक है। किसी भी जाति में वह यही अर्थ व्यक्त करेगा। इसी प्रकार सूर्य अखिल विश्व में अतिमानसिक प्रकाश का, दिव्य विज्ञान का अर्थ व्यक्त करता है।

4. मानसिक प्रतीक, जिनके उदाहरण हैं संख्या अथवा वर्णमाला। ये भी एक बार मान्य हुए नहीं कि काम करने लगते हैं, और उपयोगी हो सकते हैं। उदाहरणार्थ, ज्यामिति की आकृतियों के विभिन्न अर्थ लगाये गये हैं।...

SABCL Vol. 23, पृ. 954 —श्रीअरविन्द

# श्रीमां का प्रतीक

बीच का चक्र परम जननी, 'महाशक्ति' का प्रतीक है।

चार केन्द्रीय पंखुड़ियां मां के चार रूप हैं—और बारह पंखुड़ियां, उनके बारह गुण।

*

यह परम चेतना के श्वेत 'कमल' का प्रतीकात्मक रूप है। इसके बीच में महाशक्ति (वैश्व रचना के रूप में मां का रूप) अपने चार रूपों और बारह गुणों के साथ हैं।

*

केन्द्रीय चक्र 'भागवत चेतना' का प्रतीक है।

चार पंखुड़ियां माता की चार शक्तियों की प्रतीक हैं।

बारह पंखुड़ियां माता की बारह शक्तियों की प्रतीक हैं जो उनके कार्य के लिए अभिव्यक्त हुई हैं।

CWM Vol. 13, पृ. 64-65

15 अप्रैल 1934:

तत्त्वतः (सामान्य सिद्धान्त के रूप में) बारह शक्तियां वे स्पन्दन हैं जो पूर्ण अभिव्यक्ति के लिए अनिवार्य हैं। ये आरम्भ से ही श्रीमां के मस्तक के ऊपर दिखलायी देती हैं। अतः ये वास्तव में सूर्य की बारह रश्मियां हैं, सात नहीं, अथवा बारह ग्रह इत्यादि नहीं हैं।

CWSA Vol. 32, पृ. 598 —श्रीअरविन्द

# परम जननी, महाशक्ति

(परम पुरुष की चेतना और शक्ति)

मां की चार शक्तियां उनके चार प्रमुख व्यक्तित्व हैं। वे उनकी दिव्यता के अंश और साकार रूप हैं जिनके द्वारा वे अपने जीवों पर क्रिया करती हैं और लोक-लोकान्तर की अपनी सृष्टियों में व्यवस्था और समस्वरता लाती हैं और अपनी हजारों शक्तियों के कार्य-सूत्र का सञ्चालन करती हैं। माता हैं तो एक ही, पर वे हमारे सामने भिन्न-भिन्न रूपों में आती हैं। उनकी अनेक शक्तियां और व्यक्तित्व हैं। उनसे निकले हुए बहुत-से रूप और विभूतियां हैं जो सृष्टि में उनका काम करते हैं। जिन व्यक्ति की हम माता के रूप में पूजा करते हैं वे भागवत चित्-शक्ति हैं जो सारी सृष्टि पर छायी हुई हैं। एक होते हुए भी उनके इतने अधिक पहलू हैं कि तेज-से-तेज मन और अधिक-से-अधिक स्वतन्त्र और विशाल बुद्धि के लिए भी उनकी गति का अनुसरण कर सकना असम्भव है। माता परम-पुरुष की चेतना और शक्ति हैं और वे अपनी सारी सृष्टियों के बहुत ऊपर हैं। फिर भी उनकी गतिविधि की कुछ चीजें उनके साकार रूपों के द्वारा देखी और अनुभव की जा सकती हैं और ज्यादा आसानी से पकड़ में आ सकती हैं क्योंकि भगवती जिन दिव्य रूपों में अपने जीवों के आगे प्रकट होना स्वीकार करती हैं उनके स्वभाव और कर्म ज्यादा निश्चित और सीमित होते हैं। जब हम समस्त जीवों को तथा विश्व को धारण करने वाली सचेतन शक्ति के साथ एकता के सम्पर्क में आते हैं तभी माता की तीन प्रकार की सत्ता से अवगत हो सकते हैं। वे परात्पर आद्या परमा शक्ति के रूप में सभी लोकों के ऊपर खड़ी रह कर परम-पुरुष के कभी व्यक्त न होने वाले रहस्य के साथ सृष्टि का नाता जोड़ती हैं। वैश्व रूप में वे सारे ब्रह्माण्ड में बसी हुई, महाशक्ति के रूप में इन सभी सत्ताओं को रचती हैं, इन सब अनगिनत प्रक्रियाओं और शक्तियों को धारण करती हैं और उनमें समायी रहती हैं, वे ही उन्हें सहारा देती हैं और उनका सञ्चालन करती हैं। व्यक्तिगत रूप में वे अपनी सत्ता के इन दोनों अधिक विशाल रूपों की शक्ति को मूर्तरूप देती

हैं, उन्हें जीवन देती हैं और हमारे नजदीक लाती हैं। वे मानव व्यक्तित्व और दिव्य प्रकृति के बीच की कड़ी बनती हैं।

आद्या परात्पर शक्ति के रूप में माता सब लोकों के ऊपर स्थित हैं और अपनी शाश्वत चेतना में परम-पुरुष को धारण करती हैं। वे अकेली ही अपने अन्दर चरम शक्ति और ऐसी उपस्थिति को लिये रहती हैं जिसका वर्णन नहीं किया जा सकता। वे ही उन सत्यों को धारण करती या पुकारती हैं जिन्हें इस जगत् में प्रकट होना है। वे उन सत्यों को, उस रहस्यमय स्थान से, जहां वे छिपे हुए थे, उतार कर अपनी अनन्त चेतना की ज्योति में नीचे लाती हैं और उन्हें अपने सर्वशक्तिमान् सामर्थ्य के द्वारा शक्ति का रूप तथा असीम जीवन और विश्व में शरीर प्रदान करती हैं। परम-पुरुष उन माता के अन्दर सनातन काल के लिए अनन्त सच्चिदानन्द के रूप में अभिव्यक्त हैं और उन्हीं के द्वारा लोकों में वे ईश्वर-शक्ति के एक और द्विविध रूप में तथा पुरुष-प्रकृति के द्वैत तत्त्व में अभिव्यक्त होते हैं। परम-पुरुष माता के द्वारा अनेक लोकों और चेतना की भूमिकाओं में तथा देवता और उनकी शक्तियों में मूर्तिमान् हुए हैं। उन्हीं के कारण वे जाने और अजाने लोकों में जो कुछ है उन सब रूपों में साकार हुए हैं। सब कुछ परम-पुरुष के साथ माता की लीला है। माता ने ही इस सारे संसार में सनातन के रहस्यों और अनन्त के चमत्कारों को व्यक्त किया है। माता ही सब कुछ हैं क्योंकि सभी चीजें दिव्य चित्-शक्ति के अंश और भाग हैं। माता जिस बात का निश्चय करती हैं और जिसके लिए परम-पुरुष स्वीकृति देते हैं उसके सिवाय यहां या कहीं और कुछ भी नहीं हो सकता। परम-पुरुष की प्रेरणा से माता अपने सर्जनशील आनन्द में बीज के रूप में डाल कर जिन चीजों को देखती और आकार देती हैं उनके सिवाय और कोई चीज रूप धारण नहीं कर सकती।

अपनी परात्पर चेतना में महाशक्ति, विश्व-माता, परम-पुरुष से जो कुछ प्राप्त करती हैं उसे मूर्त रूप देकर अपने बनाये हुए लोकों में स्वयं भी प्रवेश कर जाती हैं। माता की उपस्थिति उन लोकों को अपने दिव्य व्यक्तित्व, अपने धारण करने वाले बल और आनन्द से भर देती है और उन्हें सहारा देती है।

इनके बिना उन लोकों का अस्तित्व ही न हो पाता। हम जिसे प्रकृति कहते हैं वह माता का एकदम बाहरी और कार्य-निर्देशक रूप है। माता अपनी शक्तियों और प्रक्रियाओं की समस्वरता की व्यवस्था करती हैं, प्रकृति के कार्यों को आगे बढ़ाती हैं, इन्द्रियों या अनुभव के द्वारा पकड़ में आ सकने वाली या जीवन की गति के लिए उपयोगी हर वस्तु को प्रकट या अप्रकट रूप से संचालित करती हैं। लोकों में से प्रत्येक, अपने-अपने लोक-संस्थान या विश्व-ब्रह्माण्ड की महाशक्ति की एक लीला के सिवाय कुछ नहीं है। यह महाशक्ति परात्पर माता की वैश्व आत्मा और वैश्व व्यक्तित्व के रूप में उपस्थित हैं। प्रत्येक लोक का वही रूप होता है जो माता ने अपनी दिव्य दृष्टि से देखा, अपनी शक्ति और सौन्दर्य से संजोया और अपने आनन्द द्वारा पैदा किया है।

परन्तु उनकी सृष्टि के अनेक स्तर हैं, भागवत शक्ति के अनेक सोपान हैं। हम जिस अभिव्यक्ति के भाग हैं उसकी चोटी पर अनन्त सत्ता, चेतना, शक्ति और आनन्द के लोक हैं। उनके ऊपर माता बिना किसी आवरण के शाश्वत शक्ति के रूप में रहती हैं। वहां सब सत्ताएं अवर्णनीय पूर्णता और अटल एकता में निवास करती और विचरण करती हैं क्योंकि वहां माता उन्हें अपने बाहुओं में हमेशा ही सुरक्षित रूप से लिये रहती हैं। पूर्ण अतिमानस-सृष्टि के लोक हमारे ज्यादा नजदीक हैं। माता वहां अतिमानसिक महाशक्ति हैं, भागवत सर्वज्ञ संकल्प और सर्वसमर्थ ज्ञान की शक्ति हैं जो अपने अचूक कर्मों में हमेशा दिखायी देती हैं और उनके कर्मों में सहज रूप से सब प्रकार की पूर्णता होती है। वहां सब कर्म सत्य की ओर बढ़ते हुए कदम हैं, सब सत्ताएं दिव्य ज्योति की आत्मा, बल और शरीर हैं, वहां के सभी अनुभव प्रगाढ़ और परम आनन्द के सागर, बाढ़ और लहरें हैं। लेकिन यहां, जहां हम निवास करते हैं, अज्ञान के लोक हैं, मन, प्राण और शरीर के लोक हैं जो अपनी मूल चेतना से बिछुड़ गये हैं। यह पृथ्वी उनका एक महत्त्वपूर्ण केन्द्र है और इसका विकास-क्रम एक सूक्ष्म और निश्चायक प्रक्रिया है। विश्व-माता इसे भी, इसके सारे अज्ञान, संघर्ष और अपूर्णता के बावजूद सहारा दिये हुए हैं। महाशक्ति इसे भी इसके गुप्त लक्ष्य की ओर आगे बढ़ाती और प्रेरित करती हैं।

अतिमानस-ज्योति, सत्य-जीवन और सत्य-सृष्टि के लोकों को ऊपर से यहां नीचे लाना है। नीचे चेतना के स्तरों की चढ़ती-उतरती दोहरी सीढ़ी के जैसी श्रेणियां हैं जिनमें चेतना पहले जड़-तत्त्व की निश्चेतना में गिरती है और फिर प्राण, मन और अन्तरात्मा को जीवन में प्रस्फुटित हुई आत्मा की अनन्तता में ऊपर उठती है। माता इन दोनों के बीच में अज्ञान के त्रिविध जगत् की महाशक्ति के रूप में निवास करती हैं। माता देवताओं के ऊपर रह कर जो कुछ देखती, अनुभव करती और अपने अन्दर से उत्पन्न करती हैं उसके द्वारा वे धरती के विकास-क्रम का निर्णय करती हैं और उस काम के लिए अपनी सभी शक्तियां और व्यक्तित्व अपने सामने रखती हैं। वे अपनी अंश-विभूतियों को निचले लोकों में मध्यस्थता, शासन, युद्ध और विजय करने के लिए, उनके काल-चक्र को बदलने और रास्ता दिखाने के लिए और उनकी शक्तियों को व्यक्तिगत और समष्टिगत मार्ग दिखाने के लिए भेजती हैं। मनुष्यों ने युग-युगान्तरों से दिव्य रूप और दिव्य व्यक्तित्व के रूप में इन अंश-विभूतियों के भिन्न-भिन्न नामों से माता की पूजा की है। पर साथ ही माता जिस तरह ईश्वर की विभूतियों के मन और शरीर तैयार करके उन्हें रूप प्रदान करती हैं उसी तरह अपनी इन शक्तियों और अंश-विभूतियों द्वारा अपनी विभूतियों के मन और शरीर भी तैयार करती हैं, ताकि वे भौतिक जगत् में मानव चेतना के रूप में अपनी शक्ति, अपने गुण और अपनी उपस्थिति की कुछ किरणों को अभिव्यक्त कर सकें। इस धरती की लीला के सभी दृश्य नाट क के समान हैं और इनकी योजना और व्यवस्था माता ने ही की है जिसमें वैश्व देव उनके सहायक हैं और वे स्वयं प्रच्छन्न अभिनेता हैं।

माता केवल ऊपर रह कर ही सब पर शासन नहीं करतीं, वे निचले त्रिविध लोकों में भी उतर आती हैं। निर्वैयक्तिक रूप से सभी चीजें, यहां तक कि अज्ञान की गतियां भी—छिपी हुई शक्ति के रूप में स्वयं वही हैं। वे उन्हीं के अल्प तत्त्व में उनकी प्राकृतिक शक्ति और प्राकृतिक शरीर हैं और इनका अस्तित्व इसलिए है कि अनन्त की सम्भावनाओं में से कुछ को मूर्त रूप देने के लिए परम-पुरुष का रहस्यमय आदेश हुआ था, उस आदेश को मान कर

माता ने महान् बलिदान देना स्वीकार किया और अन्तरात्मा और अज्ञान के मुखौटों को पहनना स्वीकारा। व्यक्तिगत रूप से भी माता ने इस जगत् के अन्धकार में उतरना स्वीकार किया ताकि वे उसे ज्योति की ओर ले जा सकें; वे मिथ्यात्व और भ्रान्ति में उतरीं ताकि उन्हें सत्य में बदला जा सके; इस मृत्यु में उतरीं ताकि उसे दिव्य जीवन में बदल सकें; इस सांसारिक दुःख में और उसके दुःसाध्य कष्ट और पीड़ा में उतरीं ताकि अपने परम आनन्द की तीव्रता से इनका रूपान्तर करके इनका अन्त कर सकें। उन्होंने अपने बच्चों के लिए गहरे और महान् प्रेम के कारण अज्ञान का लबादा पहनना स्वीकार किया, जन्म के प्रवेश-द्वार में घुसना स्वीकारा जो वास्तव में मृत्यु ही है। अन्धकार और मिथ्यात्व की शक्तियों के आक्रमणों और कष्ट देने वाले प्रभावों को सहने की, सृष्टि के दुःख-दर्द और यातनाओं को स्वीकारने की कृपा की क्योंकि उन्हें लगा कि केवल इसी उपाय से जगत् को ज्योति, आह्लाद, सत्य और अनन्त जीवन की ओर उठाया जा सकता है। यही वह महान् बलिदान है जिसे कभी-कभी पुरुष का बलिदान कहा जाता है, पर अधिक गहरे अर्थों में यह प्रकृति की आत्माहुति है, भगवती मां का बलिदान है।

'माता' पुस्तक (संस्करण 1973) पृ. 26-34 —श्रीअरविन्द

### श्रीमाँ की शक्ति

*जब मैं श्रीमाँ की शक्ति के बारे में कहता हूँ तब प्रकृति की शक्ति के बारे में नहीं कहता जो अपने अन्दर अज्ञान की चीजें वहन करती है बल्कि भगवान् की उच्चतर शक्ति के बारे में कहता हूँ जो प्रकृति को रूपान्तरित करने के लिए ऊपर से उतरती हैं। ... श्रीमाँ की शक्ति भगवान की शक्ति है जो अज्ञान को दूर करने और प्रकृति को भागवत प्रकृति में रूपान्तरित करने के लिए कार्य करती है।* *पूर्ण योग, पृ. 85* *श्रीअरविन्द*

# श्रीमां के चार महान् स्वरूप

मां के चार महान् पक्ष, मां की जो प्रमुख शक्तियां और व्यक्तित्व हैं उनमें से चार पक्ष, इस विश्व का मार्गदर्शन करने तथा भौतिक लीला के साथ व्यवहार करने के लिए आगे रहते हैं। उनमें से एक स्थिर विशालता, व्यापक ज्ञान, प्रशान्त अनुग्रह और अपार करुणा, सबसे बढ़े-चढ़े, सर्वश्रेष्ठ वैभव और सब पर शासन करने वाली महानता का व्यक्तित्व है। दूसरा उनकी भव्य शक्ति के बल को, दुर्धर्ष आवेग को, उनके क्षात्र स्वभाव को, दुर्दमनीय संकल्प को, प्रचण्ड वेग और सारे संसार को हिला देने वाली शक्ति को मूर्त रूप देता है। तीसरा उनकी गभीर और रहस्यमय सुन्दरता, समस्वरता और सामञ्जस्य, उनकी गूढ़ और सूक्ष्म समृद्धि और विवश करने वाले आकर्षण और हृदय को जीत लेने वाले लावण्य के कारण उज्ज्वल, मधुर और अद्‌भुत है। और चौथा पक्ष उनके अन्तरंग ज्ञान, सचेत और दोष-रहित कर्म तथा हर चीज में शान्त और यथार्थ पूर्णता के गुप्त, गम्भीर सामर्थ्य से युक्त होता है। इन स्वरूपों के कुछ गुण हैं — बुद्धिमत्ता, शक्ति, सामञ्जस्य और पूर्णता, और वे अपने साथ धरती पर इन गुणों को लाते हैं और मनुष्य के रूप में आने वाली अपनी विभूतियों में प्रकट करते हैं। जो लोग अपनी भौतिक प्रकृति को माता के सीधे और जीते-जागते प्रभाव की ओर खोल सकते हैं उनके दिव्यता की ओर चढ़ने के अनुपात में ही उनमें इन गुणों की स्थापना होगी।

इन चार स्वरूपों के चार महान् नाम हैं, महेश्वरी, महाकाली, महालक्ष्मी, और महासरस्वती। *The Mother, p. 44* *—श्रीअरविन्द*

*श्रीमाँ भगवान् की चेतना और शक्ति हैं अथवा, यह कह सकते हैं कि वे अपनी चित्–शक्तिमें भगवान् हैं। विश्व के स्वामी के रूप में ईश्वर श्रीमाँ में से ही निः सृत होते हैं जो वैश्व शक्ति के रूप में उनके पार्श्व में रहती हैं । वैश्व ईश्वर भगवान का एक पक्ष है।*
*पूर्ण योग, पृ. 33* *श्रीअरविन्द*

महेश्वरी

# महेश्वरी

राजराजेश्वरी महेश्वरी—चिन्तनशील मन और संकल्प के ऊपर 'बृहत्' में विराजती हैं और इन दोनों को ऊंचा उठा कर और महान् बना कर प्रज्ञा—ज्ञान—और विशालता देती हैं या उनमें किसी उच्चतर भव्यता की बाढ़ ला देती हैं। महेश्वरी ही वे ज्ञानमयी और शक्तिशाली माता हैं जो हमें अतिमानसिक अनन्तताओं के प्रति, विश्व-भर की विशालता, सबसे ऊंची ज्योति की भव्यता की ओर, चमत्कारिक ज्ञान के खजाने की ओर और माता की शाश्वत शक्तियों की असीम गति के प्रति खोल देती हैं। वे प्रशान्त और अद्‌भुत हैं, सदा ही महान् और स्थिर रहती हैं। उन्हें कोई चीज विचलित नहीं कर सकती क्योंकि उनमें सम्पूर्ण ज्ञान है, वे जो कुछ जानना चाहें, वह उनसे छिपा नहीं रहता। वे सभी वस्तुओं को, सभी सत्ताओं को, सबके स्वभाव को और उन्हें चलाने वाले तत्त्वों को, संसार के नियमों और उसके कालचक्र को जानती हैं। वे भूत और वर्तमान को जानती हैं और जानती हैं कि क्या होना चाहिये। उनमें एक ऐसी शक्ति है जो हर चीज का सामना करके उस पर अधिकार कर लेती है, उनकी विशाल, अगोचर प्रज्ञा और उत्कृष्ट प्रशान्त बल के आगे अन्त तक कोई नहीं ठहर सकता। वे अपने संकल्प में सम, धीर और अविचल हैं। वे मनुष्यों के साथ उनकी प्रकृति के अनुसार और चीजों और घटनाओं के साथ उनकी शक्ति और उनमें छिपे सत्य के अनुसार व्यवहार करती हैं। उनमें पक्षपात नाम मात्र भी नहीं है पर वे परम-पुरुष के आदेश का पालन करती हैं, कुछ को ऊपर उठाती हैं और कुछ को नीचे फेंकती या अपने पास से हटा कर अज्ञानान्धकार में धकेल देती हैं। वे ज्ञानी को अधिक महान् और ज्योतिर्मयी प्रज्ञा—ज्ञान—देती हैं और सूक्ष्म दृष्टिवाले व्यक्ति को अपनी मन्त्रणाओं में स्थान देती हैं, विरोधियों पर उनके विरोध का परिणाम लादती हैं और अज्ञानी और मूर्ख को उसके अज्ञान और अन्धेपन के अनुसार चलाती हैं। वे प्रत्येक मनुष्य की प्रकृति के अलग-अलग तत्त्वों का, उन तत्त्वों की आवश्यकता, प्रेरणा और मांगे हुए फल के अनुसार व्यवहार करती और उत्तर देती हैं,

उन पर जरूरी दबाव डालती हैं या फिर उन्हें अपनी पोसी हुई स्वाधीनता में अज्ञान-भरे रास्तों पर समृद्धि या नाश के लिए छोड़ देती हैं। वे सबसे ऊपर हैं, किसी से बंधी नहीं हैं। उन्हें विश्व की किसी चीज से लगाव नहीं है। फिर भी उनके अन्दर—औरों की अपेक्षा कहीं अधिक—विश्वजननी का मातृ-हृदय है, क्योंकि उनकी करुणा अनन्त और अक्षय है। उनकी नजर में सभी—यहां तक कि असुर, राक्षस, पिशाच, विद्रोही और विरोधी भी—उनके बच्चे और उस 'एक' के अंश हैं। उनका त्यागना भी केवल स्थगित करना है, उनका दण्ड भी कृपा है। लेकिन उनकी करुणा उनकी बुद्धि को अन्धा नहीं बनाती और न उनके कर्म को नियत पथ से डिगाती है। वस्तुओं का सत्य ही उनका एकमात्र लक्ष्य है और ज्ञान ही उनकी शक्ति का केन्द्र। हमारी अन्तरात्मा और प्रकृति को दिव्य सत्य में बदलना उनका उद्देश्य और पुरुषार्थ है।

*The Mother, p. 46* —*श्रीअरविन्द*

## Jhek dh ikFkuk

*हे दिव्य और पूजनीय माँ, तेरी सहायता के साथ कौन सी चीज असम्भव है ? उपलब्धि का मुहूर्त निकट है और तूने हमें अपनी सहायता का आश्वासन दिया है कि हम पूर्ण रूप से परम इच्छा को पूरा कर सकें । तूने हमें अचिन्त्य वास्तविकताओं और भौतिक जगत की सापेक्षताओं के बीच उपयुक्त माध्यम के रूप में स्वीकार कर लिया है और हमारे बीच तेरी सतत उपस्थिति तेरे सक्रिय सहयोग का चिन्ह है।*

*प्रभु ने इच्छा की है और तू कार्यान्वित कर रही है:*
*पृथ्वी पर एक नये प्रकाश का उदय होगा।*
*एक नया जगत जन्म लेगा,*
*और जिन चीजों के लिए वचन दिया गया था*
*वे पूरी की जायेंगी।*

*25 सितम्बर 1914* —*श्रीमाँ*

**महाकाली**

# महाकाली

महाकाली और ही प्रकृति की हैं। विस्तार नहीं ऊंचाई, प्रज्ञा नहीं बल और सामर्थ्य उनकी शक्ति के विशेष गुण हैं। उनमें अत्यधिक तीव्रता है, सफलता पाने के लिए शक्ति का एक प्रचण्ड आवेग है, एक दिव्य उग्रता है जो हर सीमा और बाधा को छिन्न-भिन्न करने के लिए तेजी से आगे बढ़ती है। उनकी सारी दिव्यता उनके तूफानी-प्रचण्ड कार्यों की भव्यता में फूट पड़ती है; वे द्रुत और तुरन्त फलदायक प्रक्रियावाली हैं, उनका वार सीधा और तेज होता है। वे सामने से ऐसा प्रहार करती हैं जिसके आगे सब कुछ धरा रह जाता है। असुर के लिए उनका मुख भयानक है, भगवान् से द्वेष करने वालों के विरुद्ध उनका मनोभाव भयंकर और निष्ठुर होता है क्योंकि वे ऐसी रणचण्डी हैं जो कभी युद्ध से पीछे नहीं हटतीं। वे अपूर्णता को नहीं सहतीं, वे मनुष्य के अन्दर अनिच्छुक तत्त्वों के साथ कठोर व्यवहार करती हैं और जो आग्रहपूर्वक अज्ञान और अन्धकार से चिपके रहते हैं उनके साथ सख्ती से व्यवहार करती हैं। उनका कोप विश्वासघात, मिथ्याचार और अशुभ के विरुद्ध भीषण और तीव्र होता है। वे भगवान् के काम में उदासीनता, उपेक्षा और प्रमाद नहीं सह सकतीं और जरूरत पड़ने पर असमय सोने वाले और आवारागर्द को प्रहार द्वारा तीव्र पीड़ा देकर तुरन्त जगा देती हैं। शीघ्रगामी, सरल और ऋजु वृत्तियां, निःसंकोच और निर्बाध गतियां और धधकती ज्वाला-सी अभीप्सा महाकाली की गति हैं। उनका उत्साह अदम्य है, उनकी दृष्टि और संकल्प गरुड़ की उड़ान की तरह उच्च और व्यापक हैं। उनके चरण ऊंचे मार्ग पर तेजी से बढ़ते हैं और उनके हाथ प्रहार करने और संकट में सहायता करने के लिए फैले रहते हैं। क्योंकि वे भी मां हैं और उनका प्रेम भी उनके प्रकोप के जितना ही तीव्र है, उनमें गहरी और प्रगाढ़ उत्कट अनुकम्पा है। अगर साधक उन्हें अपनी पूरी शक्ति के साथ हस्तक्षेप करने की अनुमति दे, तो उसे रोकने वाली बाधाएं या आक्रमण करने वाले शत्रु क्षण भर में भंगुर चीजों की तरह नष्ट-भ्रष्ट हो जाते हैं। अगर उनका प्रकोप विरोधियों के लिए भीषण

है और उनके दबाव की तीव्रता दुर्बल और भीरु के लिए कष्टदायक है तो महान्, शक्तिशाली और उदात्त लोग उनसे प्रेम करते और उनकी पूजा करते हैं, क्योंकि वे अनुभव करते हैं कि माता के प्रहार उनके भौतिक आधार के विद्रोही तत्त्वों को ठोक-पीट कर सामर्थ्य और पूर्ण सत्य में बदल देते हैं, उनकी टेढ़ी-मेढ़ी और विकृत चीजों को हथौड़े मार-मार कर सीधा कर देते हैं और अशुद्ध तथा दोषपूर्ण चीजों को निकाल बाहर करते हैं। जो काम एक दिन में किया जाता है उसमें उनके बिना शताब्दियां लग जातीं। उनके बिना आनन्द विशाल और गम्भीर या मृदु, मधुर और सुन्दर तो हो सकता है पर अपनी तीव्रतम प्रगाढ़ता के प्रज्वलित उल्लास को खो देगा। महाकाली ज्ञान को विजयी शक्ति प्रदान करती हैं, सौन्दर्य और सामञ्जस्य को श्रेष्ठ तथा ऊपर उठती हुई गति देती हैं और पूर्णता के धीमे और कठिन प्रयास को ऐसा वेग देती हैं जो उसकी गति को कई गुना बढ़ा देता है और लम्बे मार्ग को छोटा कर देता है। उन्हें ऐसी किसी चीज से सन्तोष नहीं होता जो चरम आनन्द की पराकाष्ठा से, ऊंचे-से-ऊंचे शिखरों से, अत्यधिक उदात्त लक्ष्य से या अत्यन्त विशाल दृश्यावलियों से कम हो। इसीलिए भगवान् की विजयी शक्ति उनके साथ रहती है और उनकी अग्नि और आवेग और द्रुत गति की कृपा से भविष्य की जगह वर्तमान में ही परम सिद्धि प्राप्त की जा सकती है।

*The Mother, p. 50* *& Jhvjfo/n*

**

*महाकाली और काली एक ही नहीं है। काली एक लघुतर रूप है।*
*महाकाली उच्चतर लोकों में सामान्यतः स्वर्णिम*
*रंग में प्रकट होती हैं।*

*— श्रीअरविन्द*

**महालक्ष्मी**

# महालक्ष्मी

केवल प्रज्ञा और शक्ति ही भगवती माता के व्यक्त रूप नहीं हैं। उनकी प्रकृति का एक और सूक्ष्म रहस्य है जिसके बिना प्रज्ञा और शक्ति अपूर्ण रहती हैं, और पूर्णता भी पूर्ण नहीं हो सकती। ज्ञान और शक्ति के ऊपर शाश्वत सौन्दर्य का चमत्कार, दिव्य सामञ्जस्यों का अगम रहस्य है, अति सम्मोहक विश्वव्यापी मनोहरता और आकर्षण का जादू है जो वस्तुओं, शक्तियों और सत्ताओं को अपनी ओर आकर्षित करके एक जगह बांधे रखता है और उन्हें मिलने और एक होने के लिए बाधित करता है ताकि छिपा हुआ आनन्द परदे के पीछे से अपना साज़ बजा सके और उन्हें अपना ताल-छन्द और अपनी टेक बना सके। यह महालक्ष्मी की शक्ति है और देहधारी सत्ताओं के लिए दिव्य शक्ति का और कोई रूप इससे अधिक आकर्षक नहीं होता। पार्थिव प्रकृति की क्षुद्रता को महेश्वरी इतनी अधिक शान्त, महान् और दूर लग सकती हैं कि वह उनके पास नहीं जा सकती और न उन्हें अपने अन्दर समा सकती है। उसकी निर्बलता को महाकाली इतनी अधिक तेज और भयानक लग सकती हैं कि वह उन्हें सह भी न सके, परन्तु महालक्ष्मी की ओर सभी बड़े उल्लास और उत्कण्ठा के साथ मुड़ते हैं क्योंकि वे भगवान् की सम्मोहक मधुरता का जादू फैलाती हैं। उनके पास होने का अर्थ ही है गहन सुख पाना और उन्हें अपने हृदय के अन्दर अनुभव करने का अर्थ है जीवन का आनन्दोल्लास और चमत्कार से भर जाना। महालक्ष्मी से लावण्य, मोहकता और मृदुता ऐसे ही प्रवाहित होती हैं जैसे सूर्य से प्रकाश। वे जहां कहीं अपनी अद्‌भुत दृष्टि को स्थिर करती हैं या जिस पर अपने स्मित की मधुरता डालती हैं वही आत्मा उनकी पकड़ में आकर बन्दी बन जाती है और अथाह आनन्द की गहराई में डुबकी लगाती है। उनके हाथों का स्पर्श चुम्बक की तरह आकर्षक है, और उनका रहस्यमय कोमल प्रभाव मन, प्राण और शरीर को परिष्कृत करता है और जहां-जहां उनके चरण पड़ते हैं वहां-वहां सम्मोहक आनन्द की दिव्य धाराएं बहने लगती हैं।

फिर भी उनकी मोहिनी शक्ति की मांग को पूरा करना या उनकी उपस्थिति को बनाये रखना आसान नहीं है। मन और अन्तरात्मा का सामञ्जस्य और सौन्दर्य, विचारों और भावनाओं का सामञ्जस्य और सौन्दर्य, हर बाहरी गतिविधि और क्रिया में सामञ्जस्य और सौन्दर्य, जीवन और उसके परिवेश का सामञ्जस्य और सौन्दर्य—यही है महालक्ष्मी की मांग। जहां सृष्टि के गूढ़, रहस्यमय आनन्द के साथ समस्वरता होती है, जहां 'सर्व सुन्दर' के आह्वान का उत्तर मिलता है और भगवान् की ओर उन्मुख बहुत-से व्यक्तियों की मैत्री, एकता और प्रसन्न जीवन-प्रवाह होते हैं, महालक्ष्मी उसी वातावरण में निवास करना स्वीकार करती हैं। जो कुछ कुरूप, क्षुद्र, तुच्छ है, जो दीन, मलिन और कुत्सित है, जो कुछ उजड्ड और असंस्कृत है वह उनके आगमन को रोकता है। जहां प्रेम और सौन्दर्य नहीं हैं या जहां वे जन्म लेने से इन्कार करते हैं, ऐसे स्थान पर महालक्ष्मी नहीं आतीं और जहां वे घटिया चीजों के साथ मिले रहते हैं या उनके कारण भद्दे बन जाते हैं वहां से महालक्ष्मी तुरन्त मुंह मोड़ लेती हैं या वहां अपना ऐश्वर्य उंडेलने की परवाह नहीं करतीं। अगर वे मनुष्यों के हृदयों में अपने-आपको स्वार्थ, घृणा, ईर्ष्या, द्वेष, असूया और कलह से घिरा हुआ पाती हैं, जब पवित्र पात्र में विश्वासघात, लोभ, कृतघ्नता मिले रहते हैं, यदि वासना की स्थूलता और असंस्कृत या अपरिष्कृत कामना भक्ति को भ्रष्ट कर देती हैं तो ऐसे हृदयों में ये सुन्दर करुणामयी देवी क्षण भर के लिए भी नहीं ठहरतीं, ऐसी अवस्था में वे दिव्य जुगुप्सा से भर जाती हैं, और पीछे हट जाती हैं, क्योंकि वे ऐसी नहीं हैं कि आग्रह या संघर्ष करें। या फिर वे अपना मुंह ढक कर इस कड़वे और विषैले आसुरी तत्त्व के बाहर फेंके जाने की प्रतीक्षा करती हैं ताकि वे अपने आह्लादपूर्ण प्रभाव को फिर से स्थापित कर सकें। उन्हें तपस्वी की शुष्कता और कठोरता पसन्द नहीं है और न हृदय के गभीर भावावेगों का दमन या आत्मा और जीवन के सुन्दर भागों का निग्रह ही पसन्द है, क्योंकि वे प्रेम और सौन्दर्य के द्वारा ही मनुष्यों पर भगवान् का जुआ रखती हैं। उनकी परम सृष्टि में जीवन स्वर्गीय कला की एक समृद्ध कृति बन जाता है और सारा अस्तित्व एक पवित्र आनन्द का काव्य। संसार की सारी समृद्धि,

सम्पदा एकत्रित करके परम व्यवस्था के लिए इकट्ठी की जाती है। उनके ऐक्य सम्बन्धी सहज ज्ञान और उनकी आत्मा के उच्छ्वास से सादी-से-सादी और मामूली-से-मामूली चीजें भी अद्भुत बन जाती हैं। हृदय में प्रवेश पा जाएं तो वे प्रज्ञा को आश्चर्य के ऊंचे-से-ऊंचे शिखर पर पहुंचा देती हैं और उसके आगे समस्त ज्ञान से परे आनन्द-समाधि के गुप्त रहस्य खोल देती हैं। वे भक्ति को भगवान् के प्रति तीव्र आकर्षण के साथ जोड़ देती हैं, बल और शक्ति को ऐसा छन्द सिखाती हैं जिससे उनके कर्म समस्वर और सप्रमाण हो जायें। वे पूर्णता पर एक ऐसी मोहिनी छा देती हैं जिससे वह चिरस्थायी हो जाये।

*The Mother, p. 46* *& Jhvjfo/n*

**

*जो सत्ताएं हमेशा जोन ऑफ आर्क के पास आतीं और उससे बातें करती थीं उन्हें अगर कोई हिन्दुस्तानी देखता तो उसे कोई और ही रूप दिखायी देता, क्योंकि जब तुम देखते हो तब अपने मन के रूप को ही प्रक्षिप्त करते हो...। भारत में तुम्हें एक अन्तर्दर्शन होता है जिसे तुम दिव्य माता कहते हो। उसी को कैथोलिक कुमारी मरियम कहते हैं और वही जापानियों की क्वानोन है या दया की देवी। दूसरे लोग उसी को कुछ और नाम दे देंगे। वही बल है, वही शक्ति है, लेकिन अलग–अलग मत उसकी अलग–अलग प्रतिमाएं बना लेते हैं।*

CWM Vol. 3, पृ. 22 *श्रीमाँ*

**महासरस्वती**

# महासरस्वती

महासरस्वती माता की कर्मशक्ति और उनकी पूर्णता और सुव्यवस्था की आत्मा हैं। वे चारों में सबसे छोटी हैं, लेकिन कार्य-सञ्चालन की क्षमता में सबसे अधिक निष्णात हैं। वे भौतिक प्रकृति के सबसे अधिक निकट हैं। महेश्वरी जगत् की शक्तियों की विशाल रूप-रेखा तैयार करती हैं, महाकाली उनकी शक्ति और वेग को सञ्चालित करती हैं, महालक्ष्मी उनके ताल और लय को प्रकट करती हैं, किन्तु महासरस्वती उनके संगठन और कार्य-सञ्चालन के ब्योरे, विवरण, विभिन्न भागों के पारस्परिक सम्बन्ध और बलों के सफल संयोजन और परिणाम तथा परिपूर्ति की अचूक यथार्थता की अधिष्ठात्री हैं। चीजों के बारे में ज्ञान, कला-कौशल और कारीगरी महासरस्वती का अपना क्षेत्र है। उनकी प्रकृति में हैं पूर्ण कार्यकर्ता का अन्तरंग और यथार्थ ज्ञान, सूक्ष्मता और धैर्य, सहज ज्ञानवाला मन, सचेतन हाथ और पारखी दृष्टि, और वे अपने चुने हुए लोगों को ये चीजें दे सकती हैं। यह शक्ति बलवान्, अथक, सावधान और निपुण शिल्पी, संगठन-कर्ता, शासक, कारीगर और लोकों का वर्गीकरण करने वाली है। जब वे प्रकृति के रूपान्तर और नव-निर्माण का काम हाथ में लेती हैं तो उनका काम श्रमपूर्ण और सूक्ष्म होता है और हमारे अधीर स्वभाव को बहुधा धीमा और बहुत अधिक लम्बा खिंचता हुआ लगता है, लेकिन वह स्थायी, पूर्ण और निर्दोष होता है। क्योंकि उनके काम का संकल्प अतिसतर्क, तन्द्राहीन और अश्रान्त होता है। वे हमारे ऊपर झुक कर हर छोटे-से-छोटे ब्योरे को देखती हैं और छूती हैं, हर छोटे-से-छोटे दोष, दरार, बल या अपूर्णता को खोज लेती हैं और जो हो चुका है और जो करना बाकी है उन दोनों के बारे में विचार करके ठीक-ठीक मूल्यांकन करती हैं। उनकी दृष्टि के लिए कोई चीज अति तुच्छ या प्रत्यक्ष रूप में नगण्य नहीं है। कोई भी स्पर्शातीत, छद्मवेशी, या छिपी हुई चीज उनसे बच नहीं सकती। वे हर एक भाग को बार-बार सांचे में ढालती हैं और तब तक मेहनत करती रहती हैं जब तक वह अपने उचित रूप और सम्पूर्ण में अपने स्थान को पा

न ले, और अपने नियत प्रयोजन को सिद्ध न कर ले। लगातार मेहनत के साथ चीजों को व्यवस्थित और पुनर्व्यवस्थित करते हुए वे सभी प्रयोजनों और उन्हें पूरा करने के तरीकों पर एक साथ नजर रखती हैं और उनका सहज ज्ञान जानता है कि किसे चुनना और किसे छोड़ना चाहिये और वे सफलता के साथ उचित यन्त्र, उचित समय, उचित परिस्थितियां और उचित प्रक्रिया को चुनती हैं। वे असावधानी, उपेक्षा और अकर्मण्यता से घृणा करती हैं। लापरवाही, टाल-मटोल के साथ, बेगार टालना या जल्दबाजी में किया गया काम, फूहड़पन या 'चल जायेगा' की वृत्ति और एक की जगह कुछ दूसरा ही कर बैठना, साधन और शक्ति का मिथ्या आयोजन और दुरुपयोग, काम न करना या अधूरा छोड़ देना उनके स्वभाव के लिए अप्रीतिकर और विजातीय है। जब उनका काम पूरा होता है तो कहीं कोई भूल नहीं रहती, काम का कोई भाग गलत जगह पर, छूटा हुआ या दोषपूर्ण अवस्था में नहीं रहता, सब कुछ ठोस, यथार्थ, पूर्ण और प्रशंसनीय होता है। उन्हें पूर्ण पूर्णता से कम पर सन्तोष नहीं होता और अगर उन्हें सृष्टि की पूर्णता के लिए अनन्त काल तक परिश्रम करने की जरूरत हो तो वे उसके लिए भी तैयार रहती हैं। इसलिए माता की सभी शक्तियों में वे ही मनुष्य और उसकी हजारों अपूर्णताओं के साथ सबसे अधिक धीरज के साथ लगी रहती हैं। अगर हम अपने संकल्प पर एकमन हों, निष्कपट और सत्यनिष्ठ रहें तो उन कृपालु, सदा मुस्कुराने वाली, साथ रह कर सहायता करने वाली, आसानी से मुंह न मोड़ने वाली, अनुत्साहित न होने वाली, बार-बार असफल होने पर भी लगी रहने वाली माता के हाथ हमें पग-पग पर सहारा देते हैं। वे द्विविधा-भरे मन को नहीं सहतीं, ढोंग, पाखण्ड, आत्मवञ्चना और बहानेबाजी के प्रति उनका मर्मभेदी व्यंग्य निर्मम होता है। आवश्यकता के समय वे हमारी मां हैं, कठिनाइयों के समय मित्र हैं, स्थिर और शान्त रूप से सलाहकार और परामर्शदाता हैं। वे अपनी ज्योतिर्मय मुस्कान से हमारी उदासी, हमारे उद्वेग और अवसाद के बादलों को तितर-बितर कर देती हैं। वे हमेशा याद दिलाती रहती हैं कि उनकी सहायता हमारे साथ है। वे शाश्वत सूर्य के प्रकाश की ओर इशारा

करती हैं और दृढ़ता, निश्चलता और धैर्यपूर्वक हमें उच्चतर प्रकृति की ओर प्रेरित करती रहती हैं। माता की अन्य शक्तियों के सभी कार्य अपनी पूर्णता के लिए उनका सहारा लेते हैं क्योंकि वे ही भौतिक आधार को सुनिश्चित बनाती हैं, ब्योरे की सामग्री की व्यवस्था करती हैं, निर्माण के ढांचे को खड़ा करके उसमें कीलें जड़ कर उसे मजबूत बनाती हैं।

*The Mother p.61* श्रीअरविन्द

श्रीमाँ की प्रार्थना

*हे दिव्य जननी, तू हमारे साथ है। प्रत्येक दिन तू मुझे आश्वासन देती है। अधिकाधिक पूर्ण और अधिकाधिक सतत रूप से विकसित होते हुए तादात्मय के साथ घनिष्ठ रूप से युक्त हम विश्व के प्रभु की ओर तथा जो परे है उसकी ओर बड़ी अभीप्सा के साथ नये प्रकाश के लिए मुड़ते हैं । समस्त पृथ्वी एक रोगी बालक की तरह हमारी भुजाओं में है जिसके लिए उसकी दुर्बलता के कारण ही हमें विशेष स्नेह है – और उसका रोगमुक्त होना जरूरी है। शाश्वत संभावनों की विशालता में झूलते हुए, क्योंकि स्वयं हम ही वे सम्भवन हैं – हम नीरवता और प्रसन्नता हैं जहाँ सब कुछ उस पूर्ण चेतना और अविकारी सत्ता में उपलब्ध है जो परे विद्यमान अज्ञान का चमत्कारिक द्वार है।*

*तब परदा फट जाता है, अवर्णनीय महिमा का उद्घाटन हो जाता है और अनिर्वाच्य भव्यता से ओत–प्रोत होकर हम संसार को शुभ समाचार देने के लिए उसकी ओर लौटते हैं।*

*प्रभो, तूने मुझे अनन्त सुख प्रदान किया है। कौन–सी सत्ता में, कौन–सी परिस्थिति में इतनी शक्ति है जो मुझसे उसे छीन सके?*

*14 अक्तूबर 1914* *श्रीमाँ*

# प्रतीक के बारह सद्‌गुण

19 *जनवरी* 1972

पिछली बार मैंने तुमसे कहा था कि मैंने बारह गुणों के बारे में जिस पर्चे पर लिखा था उसे खोज रही थी। (श्रीमां एक कागज निकालती हैं) लो यह रहा वह, किसी ने मेरे लिए ढूंढ़ लिया इसे।

1. सच्चाई या निष्कपटता 2. विनम्रता 3. कृतज्ञता 4. अध्यवसाय
5. अभीप्सा 6. ग्रहणशीलता 7. प्रगति 8. साहस
9. साधुता (अच्छाई) 10. उदारता 11. समता 12. शान्ति

पहले आठ गुण प्रभु के प्रति व्यक्ति के मनोभाव से सम्बन्ध रखते हैं और अन्तिम चार मानवता के प्रति व्यक्ति के मनोभाव से।

और हमें श्रीअरविन्द का भी एक उद्धरण मिला है (बारह पंखुड़ियों के रंगीन[१] 'चार्ट' के साथ):

बीच का हिस्सा (केन्द्र) और चार शक्तियां, सफेद।
तीन समूहों में सभी बारह पंखुड़ियां अलग-अलग रंग की:
ऊपर का समूह—लाल—नारंगी से होता हुआ पीले की ओर जाता हुआ।
बीच का समूह—पीला—हरे से होता हुआ नीले की ओर जाता हुआ।
निचला समूह—नीला—बैंजनी से होता हुआ लाल की ओर जाता हुआ।
अगर सफेद अनुकुल न हो तो,
बीच का केन्द्र सुनहरा हो सकता है (सुनहरा चूर्ण)।
'ऐजेण्डा' -13 से (श्रीमां) (श्रीअरविन्द, मार्च 20, 1934)

1. पाठकों को यह जानने में रस होगा कि श्रीअरविन्द के अनुसार इन रंगों का सामान्यतः निम्नांकित अर्थ/प्रतीक होता है, यद्यपि "क्षेत्र, संयोजन, रंग के गुण और उसकी आभा तथा शक्ति के खेल" के कारण यथार्थ अर्थ में कुछ परिवर्तन हो सकता है। प्रतीक हैं — लाल —भौतिक; नारंगी — भौतिक में अतिमानस; पीला — चिन्तक मन; हरा — जीवन/प्राण-शक्ति; नीला — उच्चतर मन; बैंजनी — भागवत करुणा या कृपा; सुनहरा — भागवत 'सत्य'; सफेद — श्रीमां अथवा 'भागवत चेतना' का प्रकाश।

# 1
# सच्चाई या निष्कपटता

**सच्चाई या निष्कपटता**

*समस्त प्रगति का आरम्भ*

*(श्रीमाँ द्वारा दिया गया पुष्प का आध्यात्मिक अर्थ तथा व्याख्या)*

*Botanical name: Aster amellus*

सच्चाई है एक पूर्ण ईमानदारी तथा पारदर्शिताः मानो सत्ता में कहीं भी ऐसी चीज न हो जो ढोंग करे, छिपाये या ऐसी चीज का दावा करे जो है नहीं।

*CWM Vol.8, p. 73* —श्रीमाँ

अपने को धोखा देने का प्रयास कभी नहीं किया जाना चाहिये। सत्ता के किसी एक भाग को दूसरों को विश्वास दिलाने का मार्ग ढूंढने का प्रयास नहीं करना चाहिये, व्यक्ति जो कुछ करना चाहता है उसके लिए बहाना बनाने के पक्ष में अनुकूल रूप से सफाई नहीं दी जानी चाहिये, कुछ अप्रिय हो जाये तो उसके प्रति अपनी आंखें कभी बन्द नहीं रखनी चाहिये, अपने को यह कह कर कि 'यह महत्वपूर्ण नहीं है, यह अगली बार बेहतर हो जायेगा' किसी चीज को घटित हो जाने देना नहीं चाहिये।

*CWM Vol. 6, p. 132* —श्रीमाँ

## पूर्ण सच्चाई के लिए शर्त

पूर्ण रूप से सच्चा या निष्कपट होने के लिए यह अनिवार्य है कि कोई प्राथमिकता न हो, कामना न हो, कोई आकर्षण, कोई अरुचि, सहानुभूति या विरोध भाव, कोई आसक्ति, कोई घृणा न हो । व्यक्ति को सभी चीजों की एक सम्पूर्ण, समग्र दृष्टि रखनी चाहिये जिसमें हर चीज अपने स्थान पर हो और उसकी सभी चीजों के प्रति एक मनोवृति हो – सच्ची अन्तर्दृष्टि की मनोवृति। यह कार्यक्रम स्पष्ट रूप से एक मनुष्य के लिए सिद्ध करना बहुत कठिन होता है। जब तक उसने अपने आप को भागवतीकरण करने का निश्चय नहीं किया है तब तक यह लगभग असम्भव लगता है कि वह अपने भीतर के इन परस्पर विरोधों से मुक्त हो पायेगा। और फिर भी, जब तक व्यक्ति अपने अन्दर इन सब को वहन करता रहेगा वह पूर्ण रूप से सच्चा या निष्कपट नहीं हो सकता। स्वतः ही, मानसिक, प्राणिक, यहाँ तक कि भौतिक कार्य-प्रणाली भी विकृत हो जाती है। व्यक्ति में जब तक प्राथमिकता रहेगी वह वस्तुओं को वैसा ही नहीं देखता, न सुनता जैसे वे अपने वास्तविक रूप में हैं। जब तक कुछ चीजें तुम्हें आकर्षित और कुछ विकर्षित करती हैं तब तक तुम उन्हें वास्तविक रूप में नहीं देख सकते। तुम उन्हें अपनी प्रतिक्रिया के द्वारा देखते हो, अपनी प्राथमिकता या अरुचि के माध्यम से देखते हो। इन्द्रियाँ यन्त्र हैं जो संवेगों, भावनाओं तथा विचारों के समान ही विकृत हो जाती हैं। इसलिए जो कुछ तुम देखते हो, महसूस करते हो, अनुभव करते या सोचते हो उसके बारे में सुनिश्चित होने के लिए तुम्हें पूर्णतया अनासक्त होना होगा और स्पष्ट रूप से यह आसान काम नहीं है। परन्तु तब तक तुम्हारा बोध पूर्ण रूप से सत्य नहीं हो सकता और इसलिए यह सच्चा नहीं है।

*CWM Vol.8, p. 398* —श्रीमाँ

जब तुम नितान्त सच्चे होते हो तब तुम अपनी सत्ता के उच्चतम आदर्श के साथ, उसके सत्य के साथ सामंजस्य में रहने का निरन्तर प्रयास करते हो।

यदि प्रत्येक क्षण तुम अपने समस्त विचार में, समस्त मनोभाव तथा कर्म में तुम यथासंभव दक्षता के साथ, यथासंभव पूर्णतया अपने को उच्चतम आदर्श के साथ अथवा यदि तुम इसके प्रति सचेतन हो तब अपनी सत्ता के साथ सामंजस्य में रहते हो, तब तुमने सच्ची निष्कपटता को प्राप्त कर लिया है। और यदि तुम अपने आन्तर सत्य द्वारा मार्गदर्शित होकर कार्य करते हो यानी यदि तुम पूर्णतया सच्चे हो, तब सारा संसार तुम्हें कुछ भी कहे, तुम्हारे लिए कोई बिलकुल फर्क नहीं पड़ेगा। ऐसी पूर्ण रूप से सच्चाई की अवस्था में तुम्हें अच्छा समझे जाने या दूसरों के द्वारा प्रशंसा किये जाने की आवश्यकता नहीं पड़ती, क्योंकि जब तुम अपनी सत्यचेतना के साथ सुसंगति में रहते हो तब तुम पहली चीज यह अनुभव करते हो कि तुम कैसा दीखते हो इसकी तुम्हें परवाह नहीं होती। चाहे तुम ऐसा दीखते हो या वैसा दीखते हो, चाहे तुम तटस्थ, भावशून्य, रूखा, घमण्डी मालूम पड़ते हो – यह सब महत्वहीन है, बशर्ते कि, मैं इसे फिर कहती हूं, तुम पूर्ण रूप से निष्कपट हो, यानी तुम यह कभी नहीं भूलते कि तुम इसलिए जीवित हो कि तुम अपना आन्तरिक केन्द्रीय सत्य सिद्ध कर सको।

*CWM Vol.14, p. 17* —श्रीमाँ

सच्चे और निष्कपट व्यक्तियों के साथ ही ऐसा होता है। मूलतः कठिनाइयों की बौछार हमेशा सच्चे लोगों पर होती है। जो सच्चे नहीं होते उन्हें धोखा देने के लिए उनके पास चीजें सबसे सुन्दर चमकीले रंगों में जाती हैं और अन्त में उन्हें यह बताने के लिए कि यह उनकी भूल थी। किन्तु जब कोई बड़ी कठिनाइयों से घिरा हुआ हो तब इससे यह प्रमाणित होता है कि वह सच्चाई की एक विशेष सीमा तक पहुंच गया है।

*CWM Vol. 5, p. 157* —श्रीमाँ

यदि तुम सच्चे या निष्कपट नहीं हो, तब होता है कि तुम्हारी अपनी चेतना आच्छादित हो जाती है। उदाहरण के लिए एक ऐसे व्यक्ति को लो जो झूठ बोलता है ; उसकी चेतना आच्छादित हो जाती है और कुछ समय के पश्चात

वह मिथ्या और सत्य के बीच अन्तर नहीं कर सकता। वह बिम्बों को देखता और उन्हें सत्य कहता है। जो दुष्ट है उसकी अभीप्सा खत्म हो जाती है; अपनी सिद्धि की क्षमता, बोधन, अनुभव और सिद्धि की समस्त सम्भावना वह खो बैठता है। यही उसकी सजा है।

*CWM Vol. 5, p. 21* —श्रीमाँ

परम प्रभु के आदेश को सुनने के लिए एकनिष्ठ रूप से संघर्ष करो, और यदि तुम पूर्ण रूप से सच्चे हो, तब वे कोई ऐसा मार्ग निकालेंगे जिससे तुम उनका आदेश सुन सको और निश्चय के साथ यह पहचान सको कि यह उन्हीं का आदेश है। उन सब को जो परम सत्य के अनुसार रहना चाहते हैं ऐसा आश्वासन दिया गया है।

*CWM Vol. 10, p. 316* —श्रीमाँ

जो सम्पूर्ण सच्चाई के साथ श्री मां के लिए कार्य करते हैं वे कार्य के द्वारा ही सत्य चेतना के लिए तैयार किये जाते हैं चाहे वे ध्यान के लिए न भी बैठें या योग की कोई प्रणाली-विशेष का अभ्यास न भी करें। तुम्हें यह बताना आवश्यक नहीं है कि ध्यान कैसे किया जाये। यदि तुम अपने कार्य में और हर समय सच्चे रहो और अपने को श्री माँ के प्रति उद्‌घाटित रखो तब जो भी आवश्यक है वह अपने आप आयेगा।

*SABCL Vol. 25, p. 199* —श्रीअरविन्द

---

*पूर्ण योग का उद्देश्य है भागवत उपस्थिति तथा चेतना में प्रवेश तथा उनके द्वारा अधिकृत हो जाना, केवल भगवान के लिए ही भगवान से प्रेम करना, भगवान की प्रकृति में हमारी अपनी प्रकृति का परिवर्तन तथा अपने संकल्प में, कर्म में तथा जीवन में भगवान का यंत्र बनना। इसका उद्देश्य एक महान योगी बनना या अतिमानव बनना (यद्‌यपि ऐसा हो सकता है) अथवा अहंकार की शक्ति, अभिमान या सुख के वास्ते भगवान को पकड़ लेना नहीं है। यह मोक्ष के लिए भी नहीं है यद्‌यपि मुक्ति इसके द्वारा आती है तथा दूसरी चीजें भी आ सकती हैं, परन्तु ये हमारे उद्देश्य निश्चित रूप में नहीं होने चाहियें। केवल भगवान ही हमारा उद्देश्य है।*

*SABCL Vol. 23, p. 503* —श्रीअरविन्द

## सच्चाई, उद्‌घाटन तथा रूपान्तरण

*प्रश्न : अ का कहना है कि श्रीमाँ ने उन्हें कहा है कि यदि सच्चाई सम्पूर्ण हो तब एक दिन में रूपान्तरण हो जायेगा। मैं नहीं समझता कि कैसे परिवर्तन तथा रूपान्तरण की एक लम्बी प्रक्रिया एक मात्र दिन में सम्पीडित की जा सकती है।*

उत्तर : श्रीमाँ का सच्चाई से तात्पर्य था केवल भगवान के प्रभाव के अलावा, किसी अन्य प्रभाव के प्रति उद्‌घाटित नहीं रहना। अब यदि समस्त सत्ता उस अर्थ में सच्ची और निष्कपट हो, यहाँ तक कि शरीर का प्रत्येक कोषाणु भी - तब द्रुततम रूपान्तरण को भला कौन रोक सकेगा? लोग, चाहे उनका कितना भी अधिक ज्योतिर्मय भाग ऐसा चाहे, ऐसा नहीं हो सकते क्योंकि अज्ञान की प्रकृति ऐसी है जिसके उपादान से सामान्य प्रकृति निर्मित हुई है। इसीलिए एक दीर्घकालिक तथा श्रमसाध्य प्रक्रिया की आवश्यकता होती है।

*SABCL Vol. 25, p. 126* —श्रीअरविन्द

आक्रमण के जो कारण गिनाये गये हैं वे कारण नहीं बल्कि अवसर हैं, साधकों में दुर्बलता है जो स्वीकृति देती है जबकि उन्हें अच्छी तरह बरखास्त किया जा सकता था। विश्व भर में अज्ञान को सम्पोषित करने के लिए विरोधी शक्तियां रहती हैं – वे साधना में इसलिए रहती हैं क्योंकि साधकों की भगवान के साथ चिपके रहने की क्षमता एवं संकल्प की तथा कठिनाइयों को जीतने में उनकी सच्चाई की परीक्षा करने का उन्हें अधिकार दिया गया है। परन्तु ऐसा केवल तब तक होता है जब तक उच्चतर ज्योति भौतिक में अवतरित नहीं हुई हो। अब यह नीचे उतर रही है, यह पर्याप्त मात्रा में यहां है जिसे कोई भी पूरी तरह अधिक से अधिक ग्रहण कर सकता है जिससे मार्ग सरल और उद्‌घाटित हो जाता है, एक क्रमिक विकास होता रहता है और अब संघर्ष नहीं रह जाता।

*SABCL Vol. 24, p. 1744* —श्रीअरविन्द

**जीवन का सच्चा प्रयोजन : भगवान के लिए या सत्य के लिए जीना, या कम से कम अपनी आत्मा के लिए जीना।**

**सच्ची निष्कपटता : भगवान के लिए जीना और बदले में किसी लाभ की आशा न करना।**

*Conversation with a Disciple V.5, p.32* —श्रीमाँ

***

सम्पूर्ण सच्चाई में हम सबको वही 'बनना' होगा जो भगवान चाहते हैं - ऐसा ही हो। बस। यदि हम सब वह बन सकें तब हमलोग वही हैं जो होना चाहिये और 'वही' हमें होना होगा। बाकी के लिए .... बाकी सब के लिए, हम यथासम्भव सर्वोत्तम प्रयास करें।

मैं जानती हूँ यह सरल नहीं है, परन्तु हम यहाँ आसान चीजें करने के लिए नहीं हैं; पूरी दुनिया उनके लिए पड़ी है जो आसान जिन्दगी चाहते हैं। मैं चाहती हूँ कि लोग यह महसूस करें कि ऑरोविल में रहना आसान जिन्दगी बिताने के लिए आना नहीं है - इसका अर्थ है प्रगति के लिए, विराट प्रयास के लिए आना। और जो लोग इसका निर्वाह नहीं कर सकते उन्हें चले जाना चाहिये। यह है स्थिति। मैं चाहती हूँ कि प्रगति के लिए आवश्यकता, सत्ता के दिव्यीकरण के लिए आवश्यकता इतनी दृढ़ हो कि जो लोग ऐसा करने में असमर्थ या अनिच्छुक हैं वे अपने आप चले जायें – 'ओह, जो मैं चाहता था वैसा यह नहीं है।' अभी हालत यह है कि जो आराम की जिन्दगी चाहते हैं और अपनी मर्जी से जो चाहें करना चाहते हैं वे कहते हैं, 'ऑरोविल चलते हैं।' इसके ठीक विपरीत होना चाहिये। लोगों को जानना चाहिये कि ऑरोविल आने का अर्थ है प्रगति के लिए लगभग अतिमानवीय प्रयास करना।

इसी मनोवृति तथा प्रयास की सच्चाई से फर्क पड़ता है। लोगों को महसूस करना चाहिये कि पाखंड या कपट के लिए यहाँ कोई स्थान नहीं है। वे यहाँ सफल नहीं हो सकते। तुम उन लोगों को मूर्ख नहीं बना सकते जिन्होंने मानवता से ऊपर ऊठने के लिए अपना सारा जीवन लगा दिया है।

हमलोग यहाँ अतिमानवता को तैयार करने के लिए हैं न कि कामनाओं और आसान जिन्दगी में पीछे लौट जाने के लिए। लोगों को यह महसूस करना होगा। यह इतना सुदृढ़ हो कि हमारी निष्कपटता ही उन्हें बाहर धकेल देगी। सिद्धि की शक्ति, सिद्धि की सच्चाई की शक्ति ऐसी होती है कि यह उनके लिए असहनीय है जो सच्चे और निष्कपट नहीं हैं।

*Conversation with a Disciple, Vol. 13, p. 135* —श्रीमाँ

*श्रद्धा को कैसे बढ़ाया जा सकता है ?*

अभीप्सा के द्वारा, मैं समझती हूँ। कुछ लोगों में यह सहज रूप से होती है ... श्रद्धा न हो तो प्रार्थना करना कठिन होता है किन्तु यदि व्यक्ति अपनी श्रद्धा को बढ़ाने के लिए प्रार्थना को एक साधन बना सके या श्रद्धा लाने के लिए अभीप्सा कर सके ... इन सदगुणों में अधिकांश में प्रयास की आवश्यकता होती है। यदि व्यक्ति में कोई चीज न हो और उसे प्राप्त करना चाहता हो, तब इसके लिए बहुत सतत प्रयास की आवश्यकता होती है, हरेक क्षण एक निरन्तर अभीप्सा, दृढ़ संकल्प, एक सच्चाई की आवश्यकता होती है। तब व्यक्ति को निश्चय हो जाता है कि एक दिन यह आयेगा - यह एक क्षण में आयेगा। कुछ लोग ऐसे होते हैं जो सन्देह को पोसते हैं क्योंकि यह एक प्रकार की पल्लवग्राहिता है - जो बहुत खतरनाक है। यह ऐसा है मानों कीड़े को फल में आने देना है, यह प्रायः पहले मन में आता है - तब पहले दिलेर बन कर उसे अस्वीकार कर देना चाहिये। निश्चय ही व्यक्ति को, क्या होता है - इसके प्रति उत्सुक नहीं होना चाहिये। ऐसी उत्सुकता भयानक होती है।

शायद बौद्धिक लोगों के लिए उनकी अपेक्षा जो सरल और निष्कपट हृदय के होते हैं और जिनमें बौद्धिक जटिलता नहीं होती – श्रद्धा अधिक कठिन होती है। परन्तु यदि एक बौद्धिक व्यक्ति में श्रद्धा है तब बहुत शक्तिशाली हो जाती है, एक बहुत शक्तिशाली चीज जो सचमुच चमत्कार कर सकती है।

*CWM Vol. 6, p. 121* —श्रीमाँ

*मधुर माँ, आपने लिखा है : सच्चाई भागवत द्वारों की कुंजी है। इसका अर्थ क्या है ?*

यह साहित्यिक रूपक की भाषा है मेरे बच्चे ! तथ्य को अलंकारिक ढंग से व्यक्त करने का यह तरीका है। तात्पर्य है कि सच्चाई के द्वारा व्यक्ति हर चीज उपलब्ध कर सकता है, भगवान को भी। यदि व्यक्ति कोई दरवाजा खोलना चाहता है तब चाभी की आवश्यकता होती है। है न ? क्योंकि दरवाजा भगवान से तुम्हें पृथक् कर देता है, सच्चाई चाभी के समान कार्य करती है और बन्द दरवाजे को खोल देती है और तुम्हें अन्दर ले जाती है। बस! शुभ रात्रि!

*CWM Vol. 6, p. 127* —श्रीमाँ

*श्रीमाँ, ग्रहणशीलता किस पर निर्भर करती है ?*

सर्वप्रथम यह सच्चाई पर निर्भर करती है - इस पर कि व्यक्ति क्या सचमुच ग्रहण करना चाहता है - और तब ... हाँ, मैं समझती हूँ कि प्रधान घटक हैं सच्चाई तथा विनम्रता। मिथ्याभिमान से अधिक तुम्हें कुछ भी बन्द नहीं करता। जब तुम आत्मसंतुष्ट होते हो तब तुम्हारे अन्दर एक प्रकार का दम्भ हो जाता है और इस कारण तुम स्वीकार नहीं करते कि तुम्हारे अन्दर कोई कमी है, कि तुम भूल करते हो, तुम ... तुम्हारी प्रकृति में कुछ है जो इस प्रकार अनम्य बन जाता है कि स्वीकार करना नहीं चाहता - यही तुम्हें ग्रहण करने से रोकता है। फिर भी, तुम्हें केवल इसका प्रयास करना है और अनुभव प्राप्त करना है। यदि संकल्प के प्रयास से तुम अपनी सत्ता के एक छोटे भाग को भी यह विश्वास दिला दो कि 'हाँ, मैं गलत हूँ, मुझे ऐसा नहीं होना चाहिये और मुझे ऐसा नहीं करना चाहिये, मुझे ऐसा महसूस नहीं करना चाहिये, हाँ, यह मेरा दोष है,' यदि तुम किसी तरह अपने आप से यह स्वीकार करवा सको जैसा मैंने कहा है, यह तुम्हें आरम्भ में कष्ट देगा किन्तु यदि तुम तब तक दृढ़ बने रहो जब तक यह स्वीकृति नहीं मिल जाती तब तुरन्त यह खुल

जाता है और अद्‌भुत रूप से प्रकाश की एक बाढ़ अन्दर आ जाती है और तब तुम बहुत प्रसन्न अनुभव करते हो, इतना आनन्दित कि तुम अपने आप से पूछते हो – 'क्यों, किस मूर्खता से मैं इसे रोकता रहा?'

*CWM Vol. 6, p. 117* —श्रीमाँ

## पूर्णतया सच्चा

*क्या हमलोगों की जीत से पूरे संसार को लाभ होगा?*

यह पूरे संसार को परिवर्तित नहीं करेगा। क्योंकि तुम्हारी विजय पूरे संसार के लिए अत्यन्त अल्प है। ऐसी करोड़ों विजय की आवश्यकता है। यदि समस्त से इसकी तुलना करो तब यह बहुत छोटी है। परन्तु यह दूसरी चीजों के साथ मिल जाती है। ऐसा कहा जा सकता है कि यह विश्व में किसी चीज को करने की क्षमता ले आने के समान है। परन्तु इसके लिए प्रभावशाली रूप से क्रिया करने के लिए कभी-कभी शताब्दियों की जरूरत होती है ; यह अनुपात का प्रश्न है। तुम प्रयास करके देख सकते हो (और यह और अधिक कठिन है) उनके साथ भी जो तुम्हारे परिवेश में हैं। तुम्हें पूर्णतया सच्चा होना होगा, इस विचार से न करो कि तुम्हें परिणाम चाहिये बल्कि इसलिए कि तुम विजय प्राप्त करना चाहते हो। यदि इसे प्राप्त कर लो तब यह आवश्यक रूप से तुम्हारे परिवेश के लोगों पर असर डालेगा। परन्तु यदि इसमें सौदेबाजी का तत्व मिला दिया जाये, यदि तुम इसे एक दूसरी चीज पाने के लिए करो : 'मैं यह तो देता हूँ परन्तु मुझे वह चाहिये।' इससे यह चीज नष्ट हो जाती है। इसमें न सच्चाई है न शुद्धता। यह सौदेबाजी है। तुम्हारी सच्चाई के साथ, तुम्हारी अभीप्सा के साथ, तुम्हारे प्रयोजन के साथ कुछ भी मिश्रित नहीं किया जाना चाहिये। तुम केवल भगवान के लिए प्रेम, सत्य और पूर्णता के वास्ते बिना किसी अन्य प्रयोजन या विचार से करते हो। और वह परिणाम लाता है।

*CWM Vol. 5, p. 20* —श्रीमाँ

## पूर्ण सच्चाई है केवल भगवान के लिए जीना

बहुत लोग कुछ सिद्धान्तों को स्वीकार कर लेते हैं, जिनमें से कुछ बहुत सुविधाजनक होते हैं और वे कहते हैं, 'हर चीज भागवत संकल्प का परिणाम है'; अन्य लोग कहते हैं, 'भगवान सर्वत्र है और हर चीज में है और हर चीज वही करता है;' अन्य लोग कहते हैं, 'मेरा संकल्प भागवत संकल्प के साथ एक हो गया है, वे ही मुझे प्रेरणा देते हैं।' सचमुच सिद्धान्त अनेक हैं और लोग उनका सहारा लेते हैं और कहते हैं, 'भगवान ही इसे मेरे अन्दर कर रहे हैं।' वे सब कुछ करते हैं जो वे करना चाहते हैं और कहते हैं, भगवान ही इसे अन्दर कर रहे हैं। उनका मस्तिष्क जो भी कहता है वह भागवत संकल्प है। यह व्यक्तिगत प्रेरणा नहीं है : 'हर चीज भागवत संकल्प का परिणाम है।' 'मैं नहीं क्रिया कर रहा हूँ, भगवान ही मेरे माध्यम से क्रिया कर रहे हैं।' वे जो करना चाहते हैं वे सब कुछ करते हैं। इस प्रकार के लोग बहुत हैं। इसीलिए मैंने कहा, 'तुम अपनी कामनाओं को छिपाने के लिए खूबसूरत लबादे के रूप में भगवान का प्रयोग न करो।' प्रश्न है सच्चा बनने का। यदि तुम सच्चे नहीं हो तब योग आरम्भ न करो।

सच्चाई या निष्कपटता सबसे अधिक कठिन है और शायद यह सर्वाधिक प्रभावशाली भी है।

यदि तुम्हारे अन्दर पूर्ण सच्चाई या निष्कपटता है तब तुम्हारी विजय सुनिश्चित है। पर यह अनन्त रूप से कठिन है। सच्चाई निहित है सत्ता के सभी तत्वों, सभी बाह्य एवं आन्तर गतियों, सभी भागों के एक मात्र इस संकल्प में कि वे सब के सब भगवान के हैं और वे केवल भगवान के लिए ही जीयें, केवल वही चाहें जो भगवान चाहते हैं, केवल भागवत संकल्प को ही व्यक्त करें और भगवान के सिवा किसी अन्य उद्‌गम से ऊर्जा न ग्रहण करें। और तब तुम देखोगे कि कोई ऐसा दिन न होगा, कोई ऐसा क्षण न होगा जब तुम्हें अपनी सच्चाई को गहन बनाने, संशोधन करने की आवश्यकता नहीं पड़ेगी - भगवान को धोखा देने से सम्पूर्ण इनकार। पहली चीज है अपने

को धोखा न दो। व्यक्ति जानता है कि वह भगवान को धोखा नहीं दे सकता; चालाक से चालाक असुर भी भगवान को धोखा नहीं दे सकता। परन्तु फिर भी यह समझ लेने के बावजूद व्यक्ति अपने जीवन में, दिन के घटनाक्रमों में वह अपने आप को धोखा देने का प्रयास करता है अनजाने, सहज भाव से और प्रायः स्वचालित रूप से ही। मैं झगड़े आदि जैसे प्रकट या प्रत्यक्ष चीजों के बारे में - जिसमें हर व्यक्ति दूसरे को ही दोष देता है - नहीं कह रही हूँ। मैं दैनिक जीवन की सूक्ष्म चीजों के बारे में बोल रही हूँ।

मैं एक बच्चे को जानती हूँ जो दरवाजे से टकरा गया। उसने दरवाजे पर एक लात जमाई। यह वही चीज है। हमेशा दूसरे की गलती होती है। जब तुम बचपन की उम्र से गुजर चुके हो, तब भी, जब तुममें थोड़ी बुद्धि हो जाती है, तब भी तुम मूर्खता भरे बहाने देते हो, कहते हो, 'यदि वह ऐसा न करता तब मैं भी ऐसा न करता।' परन्तु होना चाहिये ठीक इसके विपरीत!

मैं इसी को सच्चा होना कहती हूँ। जब तुम किसी के साथ होते हो, यदि तुम सच्चे हो, तुम्हारी प्रतिक्रिया, करने की विधि तत्काल उचित चीज करने की होनी चाहिये, इसके बावजूद कि तुम्हारे साथ का व्यक्ति ऐसा न भी करे। एक सर्वाधिक सामान्य उदाहरण ऐसे व्यक्ति का लो जो क्रोधित हो जाता है। दुःखी करनेवाली चीज कहने के बदले तुम्हें अपने आप पर केवल नजर डालने की जरूरत है कि क्या यह आसान है। यह बिलकुल प्रारम्भिक चीज है, यह जानने के लिए छोटा आरम्भ है कि क्या तुम सच्चे और निष्कपट हो। और मैं उनके बारे में कुछ नहीं कह रही हूँ जो हर तरह की छूत से पकड़े जाते हैं, यहाँ तक की भद्दे मजाक से भी और उनके बारे में जो दूसरों के समान ही मूर्खता करते हैं।

मैं कहती हूँ : यदि तुम तीक्ष्ण दृष्टि से अपने आप को देखो तब तुम अपने अन्दर सैकड़ों कुटिलताएं देखोगे यद्यपि तुम अपनी सामान्य मनोवृति में सच्चा बनने का प्रयास कर रहे हो। तुम देखोगे कि यह कितना कठिन है।

मैं कहती हूँ : यदि तुम अपनी सत्ता के सभी तत्वों में सच्चे हो, अपने शरीर के कोषाणुओं तक में और तुम्हारी समस्त सत्ता समग्र रूप से भगवान

को चाहती है, तब तुम विजय के प्रति सुनिश्चित हो सकते हो परन्तु उससे कम मूल्य पर नहीं। मैं इसी को सच्चा होना कहती हूँ।

मैं तुम्हें उन व्यक्तियों द्वारा अपने आवेगों, सनकों के आदेश पालन जैसी भद्दी भूलों के बारे में नहीं बता रही हूँ जो कहते हैं, 'मैं अब अपने आप का नहीं रहा बल्कि भगवान का हूँ, भगवान ही मेरे अन्दर हर चीज कर रहे हैं, वे ही मेरे अन्दर क्रियाशील हैं', यह सचमुच काफी भद्दा है। मैं अधिक परिष्कृत लोगों के बारे में बता रही हूँ, जो अधिक उदात्त हैं, जो अपनी कामनाओं को आच्छादित करने के लिए खूबसूरत लबादा ओढ़ लेते हैं।

दैनिक घटनाओं के क्रम में कितने विचार, कितने संवेदन, कितनी चेष्टाएं एकनिष्ठ भाव से अभीप्सा में भगवान की ओर जाती हैं? कितने? मेरा विश्वास है कि यदि पूरे दिन में एक भी ऐसा हो तब उसे महत्वपूर्ण अंकित कर सकते हो।

जब मैं कहती हूँ, 'यदि तुम सच्चे हो तब विजय के प्रति सुनिश्चित रहो,' तब मेरा मतलब है सच्ची निष्कपटता : सतत सच्ची ज्वाला बनना जो आहुति की तरह प्रज्वलित रहती है। केवल भगवान के द्वारा और भगवान के लिए जीवित रहने का वह तीव्र आनन्द और यह अनुभूति कि उनके बिना किसी चीज का अस्तित्व नहीं है, जीवन का अब कोई अर्थ नहीं, किसी चीज का कोई प्रयोजन नहीं, किसी चीज का कोई मूल्य नहीं, किसी चीज में कोई रुचि नहीं, जब तक यह पुकार न हो, यह अभीप्सा, परम सत्य के प्रति यह उद्‌घाटन न हो जिसे हम भगवान कहते हैं (क्योंकि तुम्हें कोई न कोई एक शब्द का प्रयोग करना होगा) जो विश्व के अस्तित्व के लिए मात्र हेतु है। उसे हटा दो और हर चीज गायब हो जाती है। CWM Vol. 5, p. 5 —श्रीमाँ

## भागवत संकल्प

*परन्तु भागवत संकल्प जानना कठिन होता है, है न?*

हमलोग पहले ही इस विषय का विस्तारपूर्वक अध्ययन कर चुके हैं। क्या तुम्हें

जो हमने कहा याद नहीं है? भागवत संकल्प को जानने के लिए चार शर्तें हैं :

(1) पहला मूलभूत शर्त : पूर्ण सच्चाई

(2) कामनाओं तथा प्राथमिकताओं पर पूर्ण नियन्त्रण

(3) मन को नीरव बनाना और श्रवण करना

(4) जब आदेश प्राप्त कर लो तब तुरन्त आदेश का पालन

यदि अध्यवसाय करते रहो तब तुम भागवत संकल्प को अधिक से अधिक देखोगे। परन्तु यह जानने से पहले कि यह क्या चीज है तुम अपने संकल्प को अर्पित कर सकते हो और तुम देखोगे कि सभी परिस्थितियाँ इस प्रकार व्यवस्थित हो जायेंगी कि तुम उचित चीज ही करोगे। परन्तु तुम्हें उस व्यक्ति के समान नहीं होना चाहिये जो कहा करता था, 'मैं हमेशा दूसरों में भागवत संकल्प देखता हूँ।' इससे तुम ऐसी जगह पहुँच जाओगे जिससे खतरनाक चीज और कुछ नहीं होगी, क्योंकि यदि तुम दूसरों में भागवत संकल्प देखते हो तब तुम निश्चित ही उन्हीं के संकल्प का पालन करोगे, भागवत संकल्प का नहीं। इस प्रकार से भी हम कह सकते हैं कि बहुत मनुष्यों में एक भी भागवत संकल्प का पालन नहीं करता।

तुम क्रोधी हाथी, उसके महावत तथा उस आदमी की कहानी जो हाथी के मार्ग में डटा खड़ा था, जानते हो? मार्ग के बीच में खड़ा व्यक्ति महावत से बोला, 'मेरे अन्दर का भागवत संकल्प कहता है कि यहाँ से न हटो।' कुछ बुद्धिमान-सा महावत ने उत्तर दिया, 'परन्तु हाथी के अन्दर का भागवत संकल्प चाहता है कि तुम यहाँ से हट जाओ।'

*CWM Vol.4, p.2* — श्रीमाँ

## 25 जनवरी 1951

**'हमारे अन्दर की प्राणिक सत्ता आवेगों तथा कामनाओं का, उत्साह तथा हिंसा का, गत्यात्मक ऊर्जा तथा निराशापूर्ण विषाद का, क्रोध तथा विद्रोह का वासस्थान है। यह हर चीज को गतिशील बना सकती है, निर्माण और सिद्ध करती है, यह नष्टभ्रष्ट भी कर सकती है। यह मनुष्य**

**में ऐसा भाग है जिसे प्रशिक्षित करना कठिन होता है। यह दीर्घकालिक श्रमसाध्य कार्य है जिसमें अत्यन्त धैर्य की आवश्यकता होती है और यह एक पूर्ण सच्चाई की मांग करता है, क्योंकि सच्चाई के बिना व्यक्ति प्रथम कदम से ही अपने को धोखे में रखेगा तथा प्रगति के सारे प्रयास व्यर्थ हो जायेंगे।'**

*Science of living, On Education* — श्रीमाँ

## आवश्यकता तथा कामना

एक सच्ची आवश्यकता तथा कामना के बीच की सीमारेखा का पता लगाना बहुत कठिन है (निःसन्देह यौगिक आदर्श है किसी चीज की आवश्यकता अनुभव नहीं करना और इसलिए किसी चीज की चाह नहीं करना), परन्तु यह लेख उन सद्भावपूर्ण व्यक्तियों के लिए लिखा गया है जो अपने को जानने और संयमित करने का प्रयास करते हैं। और वहीं पर वास्तव में ऐसी समस्या का समाधान करना पड़ता है जो एक असाधारण सच्चाई के लिए बाध्य करती है, क्योंकि प्रथम मार्ग में ही प्राण की भेंट जीवन के साथ कामना के माध्यम से होती है - और उसके बावजूद, आवश्यकताएं होती हैं। परन्तु कैसे जानें कि चीजें सचमुच जरूरी हैं, इच्छाएं नहीं ... इसके लिए तुम्हें बहुत ध्यानपूर्वक आत्मनिरीक्षण करना होगा, और यदि तुम्हारे अन्दर ऐसी कोई चीज हो जो एक छोटा-सा तीव्र संवेदन के समान कोई चीज उत्पन्न करे तब तुम निश्चित हो सकते हो कि कोई कामना होगी। उदाहरणार्थ, तुम कहते हो, 'यह भोजन मेरे लिए आवश्यक है' - तुम विश्वास करते हो, तुम कल्पना करते हो, तुम सोचते हो कि तुम्हें इस चीज की जरूरत है तथा तुम उस चीज को प्राप्त करने के लिए आवश्यक साधन जुटाते हो। यह जानने के लिए कि क्या यह आवश्यकता है या कामना तुम्हें बहुत निकट से आत्मनिरीक्षण करना होगा और अपने आप से प्रश्न करना होगा', 'यदि मैं वह वस्तु नहीं प्राप्त कर सकता तब क्या होगा?' तब तत्काल उत्तर यह आये, 'ओह, यह बहुत

बुरा होगा' तब तुम सुनिश्चित हो सकते हो कि यह कामना है। हर चीज के लिए यही बात है। हर समस्या के लिए तुम पीछे हटो, अपने आपका निरीक्षण करो और प्रश्न करो, 'देखते हैं क्या मुझे वह चीज मिलती है?' यदि उसी क्षण तुम्हारे अन्दर आनन्द से कुछ चीज उछल पड़े तब निश्चित जानो कि वहाँ कामना है। दूसरी ओर, यदि कुछ चीज कहती है, 'ओह, मैं इसे नहीं प्राप्त कर सकूंगा,' और तुम निराश हो जाते हो, तब पुनः यह कामना ही है।

यदि चाहते हो कि प्राण तुम्हें धोखा न दे तब तुम्हें न केवल अत्यन्त सावधान रहना होगा बल्कि तुम्हारी सच्चाई को भी लगभग चमत्कारिक होना होगा - तुम्हें हतोत्साहित करने के लिए चमत्कारिक शब्द का प्रयोग मैंने नहीं किया है, इसके विपरीत, सच्चाई के लिए तुम्हें महत्तर अभीप्सा देने के लिए किया है।

*CWM Vol. 4, p. 49* — श्रीमाँ

***

**'दिखावा करने से अच्छा है वैसा ही बन जाना। हमें अच्छा बनने का दिखावा करने की आवश्यकता तब नहीं होती जब हमारी सच्चाई पूर्ण होती है। और पूर्ण सच्चाई से हमारा तात्पर्य यह है कि हमारे समस्त विचार, भावनाएं, संवेदन तथा क्रियाएं हमारी सत्ता के केन्द्रीय सत्य के अतिरिक्त कुछ और न अभिव्यक्त करें।'**

*"Tournaments", On Education* —श्रीमाँ

पूर्ण रूप से सच्चा होने का अर्थ है केवल भागवत सत्य की कामना करना, भगवती माता के प्रति अपने को अधिक से अधिक समर्पित करना, इस अभीप्सा के अतिरिक्त सभी व्यक्तिगत मांगों तथा कामनाओं का परित्याग करना, जीवन में प्रत्येक कर्म को भगवान को अर्पित करना और इसे अहंकार रहित होकर भागवत प्रदत्त कार्य समझ कर करना। यही दिव्य जीवन का आधार है।
पूर्ण योग, 110 श्रीअरविन्द

## सच्ची निष्कपटता

सच्ची निष्कपटता है पथ पर आगे बढ़ते रहना, क्योंकि तुम अन्यथा कुछ नहीं कर सकते। सच्ची निष्कपटता है दिव्य जीवन के प्रति अपने को निवेदित कर देना क्योंकि तुम अन्यथा कुछ कर नहीं सकते। सच्ची निष्कपटता है अपनी सत्ता को रूपान्तरित करने की चाह करना तथा बाहर प्रकाश में आना, क्योंकि तुम अन्यथा कुछ नहीं कर सकते, क्योंकि यही तुम्हारे जीवन का प्रयोजन है।

जब ऐसा हो जाये तब तुम सुनिश्चित रूप से जान लो कि तुम सही मार्ग पर हो।

*CWM Vol. 3, p. 280 (1 August 1958)* —श्रीमाँ

**जहाँ भी सच्चाई या निष्कपटता है वहाँ तुम पाते हो कि सहायता, मार्गदर्शन, कृपा प्रत्युत्तर देने के लिए हमेशा ये सब मौजूद रहते हैं और तुम बहुत दिनों तक नहीं भटकते।**

*CWM Vol. 3, p. 191* —श्रीमाँ

## मिथ्यात्व पर विजय

वर्तमान समय में मिथ्यात्व के अधिपतिगण बेचारी मानवता पर लगभग पूरी तरह राज कर रहे हैं। न केवल निम्न ऊर्जा, निम्न प्राणिक सत्ता बल्कि मनुष्य का समस्त मानस उन्हें स्वीकार करता है। अनगिनत विधियों में उनकी पूजा की जाती है क्योंकि वे अपनी धूर्तता में अत्यन्त सूक्ष्म हैं तथा विविध सम्मोहक छद्मरूपों में अपने प्रयोजन सिद्ध करते हैं। परिणामस्वरूप मनुष्य अपने मिथ्यात्व के प्रति ऐसे चिपके रहते हैं मानों वे उनके लिए खजाना हो और जीवन की सुन्दरतम वस्तुओं से भी अधिक उसे संजोये रखते हैं। उसकी सुरक्षा के प्रति आशंकित, वे उसे अपने अन्दर गहराई में छिपा कर रखते हैं; परन्तु जब तक वे इसे बाहर निकाल कर भगवान को समर्पित

नहीं कर देते वे कभी सच्ची प्रसन्नता नहीं प्राप्त कर सकते। वास्तव में इसे बाहर लाकर इसे प्रकाश दिखाना अपने आप में एक महत्वपूर्ण रूपान्तरण होगा और इससे अन्तिम विजय के लिए मार्ग प्रशस्त होगा। क्योंकि प्रत्येक मिथ्यात्व को अनावृत करना भी अपने आप में एक विजय है - भूल की हर स्वीकृति अन्धकार के एक अधिपति का विध्वंस है। यह स्वीकृति स्वयं के प्रति हो सकती है बशर्ते कि वह पूर्णतया सच्ची हो और कोई सूक्ष्म पछतावे का ऐसा भाव न हो कि दूसरे क्षण उसे भूल जायें बल्कि भूल को न दुहराने का अटूट संकल्प हो। अथवा यह स्वीकृति गुरु में मूर्त भगवान के प्रति हो। गुरु के प्रति प्रत्यक्ष रूप से व्यक्तिगत स्वीकृति होने के फलस्वरूप तुम्हारा संकल्प अब तुम्हारा नहीं रह जाता, क्योंकि, यदि तुम सच्चे हो तब भगवान का आदेश तुम्हारे पक्ष में होगा। इसका अर्थ क्या होता है उसका भाव स्पष्ट करने के लिए मैं उस समय की अपनी एक अनुभूति सुनाऊंगी जब मैं पहली बार पांडिचेरी में श्रीअरविन्द से मिली थी। मैं बहुत गहरे ध्यान में थी और अतिमानस में उन चीजों को देख रही थी जो घटित होनेवाली तो थीं किन्तु किसी कारणवश अभिव्यक्त नहीं हो पा रही थीं। मैंने श्रीअरविन्द से कहा जो मैंने देखा था और पूछा कि क्या वे अभिव्यक्त होंगी। उन्होंने बस इतना ही कहा, 'हाँ'। और तत्काल मैंने देखा कि अतिमानस ने धरती को स्पर्श कर लिया तथा अभिव्यक्त होने लगा! मैंने पहली बार सत्य को वास्तविक बनाने की शक्ति को प्रत्यक्ष देखा। वही शक्ति तुम्हारे अन्दर सत्य की सिद्धि लायेगी जब तुम पूर्ण सच्चाई के साथ कहोगे, 'मैं इस मिथ्यात्व से मुक्त होना चाहता हूँ', और उत्तर तुम्हें मिलेगा 'हाँ' ।

*CWM Vol. 3, p. 141* —श्रीमाँ

## पूरब हो या पश्चिम, सच्चाई एक होती है

पूरब और पश्चिम में, जो भी अन्तर हो परन्तु आन्तरिक सत्ता या प्रकृति में जो अपरिवर्तनीय तथा अचल है, कोई अन्तर नहीं होता। अन्तर होता है

मानसिक अभ्यासों में, बाह्य अभिव्यक्ति तथा प्रस्तुति में जो शिक्षा, वातावरण तथा अन्य बाह्य परिस्थितियों के परिणाम हैं। सभी लोग, चाहे वे पूरब के हों या पश्चिम के, अपनी गहनतम भावनाओं में एक समान होते हैं। वे सोचने के ढंग में भिन्न होते हैं। सच्चाई, उदाहरण स्वरूप एक ऐसा सद्‌गुण है जो सर्वत्र एक समान होता है। जो व्यक्ति अपने देश के प्रति सच्चे हैं वे सर्वत्र एक समान ही सच्चे होते हैं। केवल इस सच्चाई को दिया रूप भिन्न होता है। मन भिन्न लोगों में भिन्न-भिन्न तरीकों से काम करता है परन्तु, हृदय सर्वत्र एक-सा होता है। हृदय एक अधिक सत्यतर वास्तविकता है और भिन्नताएं ऊपरी भागों में देखी जाती हैं। जैसे ही तुम काफी गहराई में जाओ तब तुम ऐसी चीज देखोगे जो सबमें एक-सी होती है। सब भगवान में मिलते हैं। सूर्य भौतिक प्रकृति में भगवान का प्रतीक है। बादल इसकी आकृति को बदलते रहते हैं परन्तु जब वे छंट जाते हैं तब तुम एक ही सूर्य को हमेशा और सर्वत्र देखते हो।

यदि तुम किसी के साथ तदात्म अनुभव नहीं करते तब इसका अर्थ है कि तुम अपनी सत्ता में पर्याप्त गहराई तक नहीं गये हो।

*CWM Vol. 3, p. 11* —श्रीमाँ

## श्रीमाँ की प्रार्थना

20 **अगस्त 1914**

एक नये दृष्टिकोण से लक्ष्य को देखने के लिए, जो दूसरों को उपयुक्त रूप से आलोकित कर सके, हमें आन्तरिक अनुसन्धान की अनुभूति को सतत नवीकृत करना चाहिये और हमारी यात्रा का अन्त क्या होगा इसकी पूर्व धारणा बनाये बिना चेतना की अंतिम सीमा तक लौट आना चाहिये।

परन्तु सहज प्रेरणावश मन उस प्रभाव को याद करता है जो इसने अन्तिम केन्द्र के साथ अपनी चेतना के कुछ पूर्व सम्पर्कों से प्राप्त किया है और स्वतः कहता है : 'पथ के अन्त में व्यक्ति को यही वह चीज है जो दिखाई देती है।' यह नहीं समझता कि 'वह चीज' इसके विचार में लक्ष्य को अनूदित

करने यहाँ तक कि उपहास करने के अनन्त तरीकों में से केवल एक है और न यह देखता कि बौद्धिक सिद्धान्त को अनुभूति का अनुगमन करना चाहिये न कि अनुभूति इसका अनुगमन करे।

समस्त निष्कपट भाव से पथ पर पुनर्गमन मानों पहले वहाँ कभी न गया हो, सच्ची शुद्धता, सम्पूर्ण सच्चाई है - वह सच्चाई जो एक निर्विरोध प्रगति, विकास, एक समग्र पूर्णमयता लाती है।

अपने स्वयं के बावजूद, समस्त विचार की, यानी सभी सजग सूत्रों की नीरवता में, शब्दों से अधिक गहरी, मेरी सत्ता में कुछ चीज, एक उत्कट अभीप्सा में तेरी ओर मुड़ती है, हे अनिर्वचनीय स्वामी, अपनी सभी गतिविधियों, इसके सभी तत्वों, रूपों को तुझे अर्पित करती है और इन सब के लिए परम ज्योतिर्मयता की याचना करती है।

हे तू, जिनका मैं चिन्तन नहीं कर सकती परन्तु जिन्हें निश्चय के साथ जानती हूँ।

*CWM Vol. 1, p. 227* —श्रीमाँ

## श्रीमाँ की प्रार्थना
## 22 जुलाई 1914

तू समस्त प्रेम है, हे स्वामी, और तेरा प्रेम प्रत्येक विचार एवं प्रत्येक हृदय की गहराइयों में देदीप्यमान रूप से चमकता है। रूपान्तरण का अपना कार्य सम्पादित कर : हम सब को प्रदीप्त कर, अब तक जो दरवाजे बन्द हैं उन्हें खोल दे, क्षितिज को विस्तारित कर, बल स्थापित कर, हमारी सत्ताओं को समेकित कर तथा अपने दिव्य परमानन्द में हम सब को सहभागी बना जिससे हम सभी मनुष्यों को इसमें भाग लेने के योग्य बना सकें। स्वीकार कर कि हम भीतर और बाहर की अन्तिम बाधाओं को जीत सकें, अन्तिम कठिनाइयों को पार कर सकें। एक उत्कट तथा सच्ची प्रार्थना तेरी ओर उठती हुई कभी व्यर्थ नहीं गयी है; हमेशा तू अपनी उदारता में हर पुकार का उत्तर

देता है और तेरी करुणा अनन्त है।

हे दिव्य स्वामी, अपने प्रकाश को इस अस्तव्यस्तता में आने दे और इसमें से एक नये विश्व को प्रकट कर। जो अभी तैयारी में है उसे सम्पूरित कर और एक नयी मानवता का सृजन कर जो तेरे नये और उत्कृष्ट विधान की पूर्ण अभिव्यक्ति हो सके।

हमारी प्रेरणा को कुछ नहीं रोकेगा, हमारे प्रयास को कुछ भी क्लान्त नहीं करेगा और अपनी सभी आशाओं, गतिविधियों को तेरे ऊपर छोड़ कर, तेरे परम विधान के प्रति अपने पूर्ण समर्पण में सुदृढ़ रह कर तेरी पूर्ण अभिव्यक्ति की ओर सभी विरोधों पर विजय की शान्त निश्चिति के साथ हम आगे बढ़ते जायेंगे।

जय हो, हे विश्व के स्वामी, जो समस्त अन्धकार पर विजय प्राप्त कर लेता है।

*CWM Vol. 1, p. 208* —श्रीमाँ

*यदि अकेले कृष्ण एक तरफ हों और सेना और गोले–बारूद तथा अपने सिद्धान्तों और नारों के साथ लैस और संगठित संसार दूसरी ओर हो, तो भी भगवान के एकाकीपन को ही चुनो। परवाह न करो यदि संसार तुम्हारे शरीर को रौंद दे और उसकी गोलियाँ तुम्हारे चिथड़े कर दें तथा उसकी घुड़सवार सेना तुम्हारे अंगो को कुचल कर उसे आकार रहित लौंदा बना कर एक ओर डाल दे; कारण, मन तो सदा ही मिथ्यारूप रहा है और शरीर एक मृत ढाँचा। इसके खोलों से मुक्त होकर ही आत्मा ऊपर की ओर उठ कर विजय प्राप्त करती है।*

*विचार और सूत्र 251* *श्रीअरविन्द*

## श्रीअरविन्द का उत्तर

तुम उसे लिख सकते हो कि जब किसी में साधना के लिए सच्चाई तथा दृढ़ पुकार होती है तब श्रीअरविन्द उसे स्वीकार करने में मना नहीं करते। किन्तु हो सकता है कि पथ की सभी कठिनाइयों का सामना कर सकने के पहले उसे अपने आप को तैयार करना पड़े। सब कुछ छोड़ कर ऐसा करना, पथ पर पर्याप्त रूप से विकसित होने से पूर्व ऐसा कदम उठाना जो आध्यात्मिक दृष्टि से लाभप्रद हो सके असामयिक, समय से बहुत पूर्व होगा, इससे प्रायः कठिनाइयाँ दूर होने की बजाय अधिक उत्पन्न होती हैं।

31 मई 1937 —श्रीअरविन्द

## 2
# विनम्रता

**विनम्रता**
*अपनी सरलता में प्रशंसनीय*
*(श्रीमाँ द्वारा दिया गया पुष्प का आध्यात्मिक अर्थ तथा व्याख्या)*

*Botanical name:* Agrostis nebulosa

निस्संदेह, तुम महान हुए बिना, योग कर सकते हो। महान होने की कोई आवश्यकता नहीं है। इसके विपरीत, विनम्रता सबसे पहली आवश्यकता है, क्योंकि जिस व्यक्ति में अहंकार और गर्व है वह परमोच्च सत्य को नहीं प्राप्त कर सकता।

*Letters on Yoga, II, p,504* — श्रीअरविन्द

नम्र होने का मन, प्राण और शरीर के लिए अर्थ है यह कभी न भूलना कि भगवान् के बिना वे कुछ नहीं जानते, कुछ नहीं हैं और कुछ नहीं कर सकते। भगवान् के बिना वे अज्ञान, अव्यवस्था और असमर्थता के सिवा कुछ नहीं हैं। केवल भगवान् ही 'सत्य', 'जीवन', 'शक्ति', 'प्रेम' और सुख-शान्ति हैं। अतः मन, प्राण और शरीर को हमेशा के लिए यह सीख लेना और अनुभव कर लेना चाहिये कि वे भगवान् को केवल उनके सार-तत्व में ही नहीं बल्कि

उनकी क्रिया और अभिव्यक्ति में भी समझने या उनका मूल्यांकन करने में एकदम असमर्थ हैं।

यही एक मात्र नम्रता है और इसके साथ अचंचलता और शान्ति आती हैं। और यही सब प्रकार के विरोध और आक्रमणों के आगे सबसे निश्चित ढाल है। वस्तुतः मनुष्य में 'विरोधी शक्ति' हमेशा घमंड के दरवाजे खटखटाती है क्योंकि यही दरवाजा खुलकर उसे अंदर आने देता है।

CWM Vol. 14, p. 160 — श्रीमाँ

*विनम्र होने का ठीक और गलत तरीका क्या है?*

यह बहुत सरल है। जब लोगों से विनम्र होने के लिए कहा जाता है तो वे तुरंत दूसरे लोगों के सामने नम्र होने की बात सोच लेते हैं, यह नम्रता गलत है। सच्ची नम्रता भगवान् के प्रति नम्रता है। यानी, एक यथार्थ, ठीक-ठीक जीता-जागता भाव कि हम भगवान् के बिना कुछ भी नहीं हैं, कुछ भी नहीं कर सकते और कुछ भी नहीं समझ सकते। और यह जीता-जागता भाव हमेशा बना रहना चाहिये क्योंकि तब ग्रहणशीलता का सच्चा भाव हमेशा बना रह सकता है — एक ऐसी विनम्र ग्रहणशीलता का जो भगवान् के सामने व्यक्तिगत आत्म-प्रदर्शन नहीं करती।

CWM Vol. 5, p. 45 — श्रीमाँ

## नम्रता और कृतज्ञता

तुम्हारे अंदर एक प्रकार की आंतरिक नम्रता होनी चाहिये, जो इस बात का भान कराती है कि तुम भागवत 'कृपा' के बिना कितना असहाय हो, कि सचमुच उसके बिना तुम अपूर्ण और शक्तिहीन रहते हो। और फिर अगर कुछ तुम्हें इस बात का भान हो जाये कि तुम अपने आप को जिस परिस्थिति में हो उसमें से केवल कृपा ही तुम्हें निकलने के लिए उपाय बता सकती है और बल दे सकती है तो स्वभावतः अपने अंदर अगर तुम आवाहन करो,

अभीप्सा करो और उत्तर पाने की आशा करो तो तुम बिलकुल स्वाभाविक रूप से अपने आप को भागवत 'कृपा' की ओर उद्घाटित कर लोगे।

औऱ बाद में तुम्हें इस ओर बहुत ध्यान देना चाहिये - भागवत कृपा तुम्हें उत्तर देगी, भागवत कृपा तुम्हें कष्ट में से निकल आने में सहायता देगी। लेकिन जब तुम कष्ट से छुटकारा पा जाओ और कठिनाई में से निकल आओ, तो यह न भूलो कि भागवत कृपा ने ही तुम्हें उबारा है। यह न सोचो कि यह तुम्हारा अपना काम है। यह महत्वपूर्ण बात है। कठिनाई खत्म होते ही अधिकतर लोग कहते हैं : आखिर, मैंने अपने आप को बड़ी अच्छी तरह कठिनाई में से निकाल लिया।

इस तरह तुम दरवाजा बंद कर देते हो। इस आंतरिक मूढ़ता को दूर करने के लिए, और तुम्हें यह अनुभव कराने के लिए कि तुम कुछ नहीं कर सकते, तुम्हें फिर से किसी तीव्र व्यथा की, किसी भयानक कठिनाई की जरूरत होती है। क्योंकि तभी तुम जरा-सा खुलते हो और लचीले बनते हो। आदमी बहुत जल्दी भूल जाता है और अपनी क्षमता से संतुष्ट रहता है। इसीलिए प्रहार बढ़ते जाते हैं और कभी-कभी भयंकर हो जाते हैं।

गहराइयों तक यह जानने के लिए कि हम कुछ भी नहीं हैं, कि हम कुछ भी नहीं कर सकते, हमारा अस्तित्व ही नहीं है, कि हम हैं ही नहीं, कि भागवत चेतना और कृपा के बिना कोई सत्ता ही नहीं है, कितने प्रहारों की जरूरत होती है। जिस क्षण तुम यह जान लेते हो, सारी कठिनाइयाँ चली जाती हैं। और तुम्हें बहुत समय लगता है।

अग्निशिखा - जून 2007 —श्रीमाँ

विनम्रता के साथ रुद्र-शक्ति जो चैत्य शक्ति से संपन्न हो आवश्यक है। श्रीअरविन्द योग समन्वय में कहते हैं —

मनुष्य का यह हृदय एवं चैत्य पुरुष प्राण की अंध प्रेरणाओं के तंतु जाल से ओत-प्रोत है। इन सबसे आलोड़ित और आक्रान्त होने के कारण हमारा चित्त किसी प्रकार की शान्ति से परिचित नहीं है और पूर्णता प्राप्त करने में असमर्थ

है। पूर्णता के दो अंग हैं : एक ओर तो उच्च और विशाल मधुरता, उन्मुक्तता, भद्रता, शान्ति, निर्मलता और दूसरी ओर प्रबल और उत्कट शक्ति एवं प्रचंडता। साधारण मानवीय स्वभाव और कर्म की भाँति दिव्य स्वभाव और कर्म के भी सदैव दो छोर होते हैं। माधुर्य और बल, मृदुता और शक्ति, सौम्य और रौद्र, धारण, सहन और समस्वर करनेवाली शक्ति और अपना अधिकार जमाने और विवश कर देनेवाली शक्ति, विष्णु और ईशान, शिव और रुद्र। सर्वांगपूर्ण जागतिक कर्म के लिए दोनों सामान्य रूप से आवश्यक हैं।

सब कुछ सहन करनेवाली शक्ति को प्राप्त करना या केवल प्रेम, उदारता, सहिष्णुता, मृदुता, नम्रता एवं तितिक्षा से युक्त हृदय का विकास करना भी समग्र पूर्णता नहीं है। पूर्णता का दूसरा पक्ष है एक ऐसी आत्मसंहत, शांत और अहंकाररहित रुद्र शक्ति जो चैत्य शक्ति से संपन्न हो किंवा बलवान हृदय की एक ऐसी शक्ति जो बिना हिचकिचाए एक आग्रहपूर्ण एवं बाहर से कठोर दिखनेवाले कर्म को अथवा आवश्यकता पड़ने पर प्रचण्ड हिंसा के कर्म को भी धारण करने में समर्थ हो (जैसा गीता कहती है), बल, शक्ति और सामर्थ्य का अपरिमित तेज हो, हृदय की मधुरता और निर्मलता के साथ समस्वरित हो तथा कर्म में उसके साथ एकमय हो सकता हो अर्थात् सोम की सुधामयी चन्द्ररश्मियों के मण्डल से समोद्भूत होनेवाली इंद्र की विद्युत ही दोहरी पूर्णता है। और इन दो शक्तियों - सौम्यत्व और तेजस को अपने अस्तित्व और कार्य का आधार आभ्यन्तरिक प्रकृति तथा चैत्य पुरुष की दृढ़ समता पर रखना होगा।

योग समन्वय - पृ. 750 — श्रीअरविन्द

## बड़प्पन की भावना

बड़प्पन की भावना का जहाँ तक प्रश्न है, जब चेतना के सामने महत्तर क्षितिज खुल जाते हैं तब बड़प्पन की भावना से बचना थोड़ा कठिन होता है, जब तक कि मनुष्य को संत-जैसा और विनम्रतापूर्ण स्वभाव ही प्राप्त न हो चुका हो। कुछ लोग महाशय जैसे (श्री रामकृष्ण के शिष्यों में से एक) शिष्यों के

समान होते हैं जिनमें आध्यात्मिक अनुभव अधिकाधिक नम्रता उत्पन्न करता है ; फिर दूसरे लोग विवेकानंद के जैसे होते हैं जिनमें वह शक्तिशालिता और बड़प्पन की महान् भावना उत्पन्न करता है । यूरोपियन आलोचकों ने उनपर इसके लिए कठोर रूप से दोषारोपण किया है। कुछ दूसरे लोग ऐसे होते हैं जिनमें वह मनुष्यों के सामने बड़प्पन की भावना और भगवान् के सामने विनम्रता की भावना जगाता है। प्रत्येक स्थिति का अपना-अपना मूल्य है। उदाहरण के लिए, विवेकानंद के उस प्रसिद्ध उत्तर को लो जो उन्होंने मद्रासी पंडित को उस समय दिया था जब कि उसने उनके एक अधिकारपूर्ण कथन के विरुद्ध आपत्ति की थी : 'नहीं, पर मैं, विवेकानंद, ऐसा कहता हूँ।' — और यह सुनकर वह पंडित मौन हो गया था। वह 'मैं, विवेकानंद' साधारण आँखों के सामने आत्मविश्वासपूर्ण अहं भाव के एक हिमालय की तरह खड़ा हो जाता है। परन्तु विवेकानन्द के आध्यात्मिक अनुभव में कोई चीज मिथ्या या दोषपूर्ण नहीं था। यह महज उनका अहंभाव नहीं था, बल्कि जिस वस्तु के वे प्रतिनिधि थे उसका बोध था और साथ ही उस योद्धा का भाव था जो किसी बड़ी महान वस्तु का प्रतिनिधि होने के नाते अपने को पराभूत या अपमानित करने का अवसर नहीं दे सकता था। परन्तु इसका मतलब आध्यात्मिक विनम्रता की आवश्यकता को अस्वीकार करना नहीं है अपितु यह दिखलाना है कि यह प्रश्न इतना आसान नहीं है जितना कि यह प्रथम दृष्टि में दिखायी देता है। क्योंकि, यदि मुझे अपने आध्यात्मिक अनुभवों को प्रकट करना है तो मुझे उन्हें लिपिवद्ध करना होगा, उनके भावों, उनके विचारों, संप्रतीतियों, उनके साथ संलग्न चेतना के विस्तारों आदि को बताना होगा। भला मुझे उस अनुभूति के साथ क्या करना चाहिये जिसमें मनुष्य समस्त जगत् को अपने अंदर अनुभव करता है या भगवान् की शक्ति को अपनी सत्ता और प्रकृति में, विश्वास की निश्चितता को या भगवान् के साथ अपने एकत्व को अथवा इस महत्तर ज्ञान और जीवन के मुकाबले मानवीय विचार औऱ जीवन की तुच्छता को अनुभव करता है? और मुझे 'मैं' शब्द का प्रयोग करना ही होगा — मैं इस कथन का आश्रय नहीं ले सकता कि 'यह शरीर' या 'यह बाह्य रूप'

विशेष कर जबकि मैं मायावादी नहीं हूँ। अतएव, क्या मुझे ऐसी व्यंजना-शैली में नहीं जा पड़ना चाहिये जिसके कारण 'अ' मेरे कथन को अभिमान और अहंकार से भरा हुआ मान कर अपना मस्तक हिलाने लगे?

दूसरी चीज : मुझे लगता है कि तुम श्रद्धा को बहुत अधिक मानसिक विश्वास के साथ मिला-जुला देते हो, परन्तु सच्ची श्रद्धा एक आध्यात्मिक वस्तु है, अंतरात्मा का एक प्रकार का ज्ञान है। तुमने अपने पत्र में जो बातें लिखी हैं वे मानसिक विश्वास के कठोर कथन हैं और अंत में मानसिक मतवाद और लक्ष्य के अत्यंत उग्र कथन की ओर ले जानेवाले हैं। क्योंकि वे अपने हैं और इसलिए उन्हें दूसरों के कथनों से अधिक महान होना ही चाहिये – यह एक ऐसा मनोभाव है जो मनुष्य-स्वभाव में सर्वत्र पाया जाता है। और तो और, नास्तिक लोग भी सहिष्णु नहीं होते, वरन प्रकृति और जड़ तत्व के अपने सिद्धांत को ही एक मात्र सत्य घोषित करते हैं।

*SABCL : Vol. 24, p. 1388* – श्रीअरविन्द

## विनम्रता अपरिहार्य है

भगवान के सम्मुख विनम्रता भी आध्यात्मिक जीवन का एक अपरिहार्य गुण है, और आध्यात्मिक घमंड, दंभ या मिथ्याभिमान और अपने-आप पर ही भरोसा सर्वदा नीचे की ओर धकेलते हैं। परन्तु भगवान पर विश्वास और अपनी आध्यात्मिक भवितव्यता पर विश्वास (अर्थात् यह भाव कि चूँकि मेरा हृदय और अंतरात्मा भगवान् को खोजते हैं, मैं उन्हें प्राप्त करने में असफल नहीं हो सकता) – ये मार्ग की कठिनाइयों को देखते हुए बहुत आवश्यक हैं। दूसरों के प्रति घृणा-भाव रखना अनुचित है, विशेष कर इस कारण से कि भगवान् सबके अंदर विराजमान हैं। स्पष्ट ही मनुष्यों की क्रियाएं और अभीप्साएं तुच्छ और मूल्यहीन नहीं हैं, क्योंकि समस्त जीवन ही अंतरात्मा के अन्धकार से निकल कर ज्योति की ओर अग्रसर होने की एक प्रक्रिया है। परन्तु हमारा मनोभाव यह है कि मनुष्य जाति मन द्वारा गृहीत सामान्य

उपायों से, राजनीति, सामाजिक सुधार, लोकोपकार आदि के द्वारा अपनी सीमाओं से बाहर नहीं जा सकती – ये चीजें केवल सामयिक या स्थानिक औषधियाँ हो सकती हैं। निस्तार पाने का एकमात्र सच्चा उपाय है चेतना का परिवर्तन, होने की एक महत्तर, विशालतर और विशुद्धतर पद्धति में परिवर्तन, और उसी परिवर्तन पर आधारित जीवन और कर्म। अतएव उसी चीज की ओर समस्त शक्तियों को मोड़ देना चाहिये जब एक बार आध्यात्मिक जागृति पूर्ण हो जाये। इसका अर्थ अवहेलना करना नहीं है, बल्कि जो उपाय निष्फल ज्ञात हुए हैं उनके बदले मात्र फलदायी साधनों को पसंद करना है।

*SABCL : Vol.23,p 553 (Letters on Yoga II)* – श्रीअरविन्द

हमें यह सीखना चाहिये कि हमने चाहे जितना प्रयास, चाहे जितना संघर्ष किया हो, चाहे जितनी विजय पायी हो, हम जिस पथ को पूरा कर चुके हैं वह, अभी जिस पर चलना बाकी है, उसकी तुलना में कुछ भी नहीं है।

सचमुच सच्ची नम्रता हमारा रक्षक है – यह अन्धकार के अनिवार्य विलयन के लिए सबसे निश्चित मार्ग है। – मातृवाणी

## ईश्वर

नीचे के जगतों में व्यापक हो, फिर भी
ऊँचे में तुम अधिवास किया करते हो,
मालिक श्रमिकों के, शासक के, ज्ञानी के,
पर प्रेमपाश में बंधे दास बने रहते हो!

मिट्टी बनने में, अथवा कृमि बन जाने में
इनकार कभी भी हुआ नहीं है तुमको,
है यह विनम्रता जिसके चलते हम सब,
हो तुम ईश्वर - ऐसा जान सके हैं तुमको।

*Collected Poems, p. 63* -श्रीअरविन्द

# 3

# कृतज्ञता

**कृतज्ञता**

*तुम्हीं सभी बन्द द्वारों को खोल देती और रक्षण करने वाली भागवत कृपा को अन्दर प्रवेश करने देती हो*

*(श्रीमाँ द्वारा दिया गया पुष्प का आध्यात्मिक अर्थ तथा व्याख्या)*

*Botanical name: Ipomoeacarnea*

कृतज्ञता - तू ही है जो सभी बन्द द्वारों को खोल देती है और कृपा को – जो रक्षा करती हैं – गहराई तक प्रवेश करने देती है।

कृतज्ञता - भगवान से प्राप्त कृपा का यह प्रेममय सम्मान है। भगवान ने तुम्हारे लिए जो कुछ किया है और जो कुछ वह कर रहा है उस सबकी यह विनयपूर्वक स्वीकृति है।

यह भगवान के प्रति सहज रूप से आभार की अनुभूति ही है जो तुमसे सर्वोत्तम ढंग से कार्य कराती है जिससे तुम - भगवान तुम्हारे लिए जो कुछ कर रहे हैं - उसके अधिक से अधिक योग्य बन सको।

विस्तृत कृतज्ञता - वह कृतज्ञता है जो हमारे अन्दर भागवत कृपा के समस्त विस्तारों को जाग्रत करती है।

पूर्ण कृतज्ञता - जब समस्त सत्ता प्रभु के चरणों में सम्पूर्ण विश्वास के साथ

अपने को निवेदित कर देती है।

मानसिक कृतज्ञता - मन की कृतज्ञता उसके प्रति जो प्रगति के लिए प्रेरित करता है।

भगवान के प्रति अपनी कृतज्ञता प्रकट करने का शान्तिपूर्वक प्रसन्न रहने से अधिक उत्तम मार्ग कोई नहीं है।

- जो कुछ मैं देती हूँ उसे प्रसन्नतापूर्वक स्वीकार करना कभी स्वार्थपरक नहीं हो सकता।
- प्रसन्नतापूर्ण कृतज्ञता से बढ़कर अहंकार के लिए कोई अन्य उपचार नहीं है।
- भगवान की ओर से तुम्हें जो कुछ दिया जाये उसे हमेशा आनन्द के साथ स्वीकार कर लो।
- एक हठधर्मी व्यक्ति कृतज्ञ नहीं हो सकता क्योंकि जब वह मनोवांछित वस्तु प्राप्त कर लेता है तब वह इसका सारा श्रेय अपने ही संकल्प को देता है और जब वह ऐसी चीज पाता है जिसे वह नहीं चाहता तब बुरी तरह नाराज हो जाता है और सारा दोष उस पर मढ़ देता है जिसे वह इसके लिए जिम्मेदार समझता है चाहे वह भगवान हो या कोई मनुष्य या प्रकृति।
- अपनी कृतज्ञता बनाये रखना बहुत कठिन होता है क्योंकि एक समय में यह बहुत सबलता के साथ आती है और फिर वापस लौट जाती है। तुम्हारी कृतघ्नता के बावजूद भगवान सहन करते रहते हैं क्योंकि वे पूरी तरह जानते हैं कि यह कैसे और क्यों और किसलिए होता है। वे जानते हैं कि तुम कोई चीज क्यों कर रहे हो। वे पूरी कार्यप्रणाली का ज्ञान रखते हैं, इसीलिए वे सहन कर सकते हैं।
- किसी व्यक्ति की श्रेष्ठता इस बात से जानी जाती है कि उसमें कृतज्ञता की कितनी क्षमता है।

- अहंकार उसी चीज के बारे में सोचता रहता है जो उसके पास नहीं है और उसे प्राप्त करना चाहता है। यह उसका निरन्तर सर्वोपरि व्यवसाय रहता है।
- आत्मा जानती है कि उसे क्या चीज दी जाती है - और वह अनन्त कृतज्ञता में निवास करती है।
- भौतिक में किसी सत्ता या व्यक्ति की प्रसन्नता भगवान के प्रति कृतज्ञता की सर्वोत्तम अभिव्यक्ति है।
- धरती पर भौतिक रूप से कृतज्ञता में ही व्यक्ति शुद्धतम आनन्द का उद्‌गम पाता है।

*CWM Vol. 14, p. 154* —श्रीमाँ

## उत्साह और कृतज्ञता

दो मुख्य चीजें होती हैं। एक है उत्साह की सामर्थ्य जो व्यक्ति को उसके कम या अधिक तमस से बाहर खींच ले आती है जिससे वह किसी चीज में पूरी तरह अपने आप को झोंक देता है और यह चीज उसे ऊपर उठा देती है। उदाहरण के लिए कलाकार अपनी कला के लिए और वैज्ञानिक अपने विज्ञान के लिए। और सामान्यतः प्रत्येक व्यक्ति में जो सृजन करता है या निर्माण करता है - एक उद्‌घाटन होता है, एक विशिष्ट क्षमता के लिए उद्‌घाटन, एक विशिष्ट सम्भावना जो उसमें एक उत्साह की सृष्टि कर देती है। जब यह सक्रिय होती है, तब व्यक्ति में कुछ चीज जाग्रत हो जाती है और इसमें, कार्य के सम्पादन में लगभग समस्त सत्ता की सहभागिता शामिल हो जाती है।

एक तो यह है। और दूसरा, कुछ लोग ऐसे होते हैं जिनमें कृतज्ञता की स्वाभाविक क्षमता होती है, जिनमें प्रत्युत्तर देने की उत्कट आवश्यकता, उत्साह, भक्ति, आह्लाद के साथ कुछ ऐसी चीज के लिए प्रत्युत्तर देने की उत्कट आवश्यकता की अनुभूति होती है जिसे वे समस्त जीवन के पीछे,

सबसे छोटी चीज के पीछे, जीवन की छोटी-छोटी घटनाओं के पीछे छिपा हुआ चमत्कार मानते हैं, वे उस परम सौन्दर्य अथवा अनन्त कृपा की अनुभूति करते हैं जो सभी वस्तुओं की ओट में विद्यमान है।

मैं ऐसे लोगों को जानती थी जिन्हें किसी चीज का ज्ञान नहीं था। वे शायद ही शिक्षित थे। उनके मन बिलकुल सामान्य थे किन्तु उनमें कृतज्ञता की, स्नेह की क्षमता थी जो अपने आप को दे देती है, समझती है और कृतज्ञता प्रकट करती है। उनके लिए, चैत्य के साथ सम्पर्क प्रायः होता रहता था, लगभग निरन्तर, तथा इस सीमा तक जितनी कि उनमें क्षमता होती थी, सचेतन, बहुत सचेतन नहीं परन्तु थोड़ा – इस अर्थ में कि वे यह महसूस कर सकते थे कि उन्हें अपने से ऊपर उठाये जाने में मदद दी जा रही है।

ये दो चीजें लोगों को सबसे अधिक तैयार करती हैं। इनमें से कोई एक उनमें जन्मजात रूप से होती है। और यदि वे प्रयास करें तब यह क्रमशः विकसित होती रहती है, संवर्धित होती है। उत्साह की क्षमता एक ऐसी चीज है और उदार कृतज्ञता, कृतज्ञता की प्रचुरता जो तुच्छ अहंकार से बाहर धन्यवाद-ज्ञापन में अपने को लुटा देती है। अपनी चैत्य सत्ता में भगवान के साथ सम्पर्क में आने के लिए ये दो अत्यन्त सशक्त उत्तोलक हैं। चैत्य सत्ता के साथ सम्पर्क में यह कड़ी का कार्य करता है – सबसे अधिक सुनिश्चित कड़ी।

*CWM Vol. 7, p. 418* —श्रीमाँ

## कृतज्ञता तथा भक्ति

किन्तु एक और गति है जिसे हमेशा भक्ति के साथ रहनी चाहिये ... कृतज्ञता का इस प्रकार का बोध कि भगवान हैं, धन्यवाद-ज्ञापन की एक अद्भुत अनुभूति जो यह विचार आते ही सचमुच तुम्हें एक परम आनन्द से भर दे कि भगवान का अस्तित्व सचमुच है, विश्व में कुछ ऐसी शक्ति है जिसे भगवान कहते हैं, केवल विरूपता और दुष्टता ही नहीं है जिसे हम

सर्वत्र देखते हैं। और जब कोई छोटी-सी चीज भी प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से भगवान के अस्तित्व के उत्कृष्ट सत्य के सम्पर्क में ला दे, हृदय सभी चीजों के प्रति ऐसे उत्कट, अद्‌भुत आह्लाद और कृतज्ञता से भर जाये तब उसमें सबसे अधिक आनन्ददायक स्वाद मिलता है। कृतज्ञता के आनन्द के समान तुम्हें कोई चीज आनन्द नहीं दे सकती। एक चिड़िया को गाते हुए हम सुनते हैं, हम एक सुन्दर फूल देखते हैं, एक छोटे बच्चे को खेलते देखते हैं, उदारपूर्वक कार्य का अवलोकन करते हैं, एक सुन्दर वाक्य पढ़ते हैं, डूबते सूरज पर दृष्टि डालते हैं, कुछ भी करते हैं तभी अचानक एक ऐसी गहरी तीव्र भावना से – कि यह संसार भगवान की ही अभिव्यक्ति है, कि संसार के पीछे कुछ है जो भगवान है – हम भर जाते हैं। अतः मैं देखती हूँ कि बिना कृतज्ञता के भक्ति बिलकुल अपूर्ण है। भक्ति के साथ कृतज्ञता अवश्य आनी चाहिये।

– श्रीमाँ

## कृतज्ञता तथा कठिनाइयाँ

धूमिलता की अवधियाँ अक्सर और सामान्य रूप से आती हैं। ऐसी अवस्था में शान्त रहना चाहिये और घबराना नहीं चाहिये और समझना चाहिये कि ये आध्यात्मिक रातें दिन के पूर्ण प्रकाश के बाद बारी-बारी से आती रहती हैं। परन्तु शान्ति बनाये रखने हेतु तुम्हें अपने हृदय में भगवान के प्रति उनकी समस्त सहायता के लिए कृतज्ञ बने रहना चाहिये। यदि कृतज्ञता भी आच्छादित हो जाती है तब धूमिलता की अवधियाँ बहुत लम्बी हो जाती हैं। फिर भी एक अधिक तीव्र और प्रभावशाली उपाय है – यह है अपने हृदय में शुद्धीकरण की ज्वाला को, प्रगति के लिए अभीप्सा को, उत्कटता, समर्पण के उत्साह को बनाये रखना चाहिये। यह ज्वाला उन सब के हृदय में जलती रहती है जो सच्चे और निष्कपट हैं। तुम्हें इसे कृतघ्नता की राख से कभी आच्छादित होने नहीं देना चाहिये।

– श्रीमाँ

## कृतज्ञता तथा करुणा

करुणा तथा कृतज्ञता मूलतः चैत्य के गुण हैं। ये गुण चेतना में केवल तभी प्रकट होते हैं जब चैत्य पुरुष सक्रिय जीवन में भाग लेता है।

प्राणिक तथा भौतिक सत्ताएं इन्हें दुर्बलता के रूप में अनुभव करती हैं क्योंकि ये इसके आवेगों की मुक्त अभिव्यक्ति को प्रतिबन्धित रखती हैं जो बल की शक्ति पर आधारित होते हैं।

जैसाकि हमेशा होता है जब मन पर्याप्त रूप से शिक्षित नहीं होता तब वह प्राणिक सत्ता का सह-अपराधी और भौतिक प्रकृति का गुलाम बन जाता है जिनके विधान अपनी अर्धचेतन यांत्रिकता में इतने अभिभूत करनेवाले होते हैं कि यह पूरी तरह समझ नहीं पाता। जब मन प्रथम चैत्य गतियों के प्रति जाग्रत हो जाता है, तब यह अपने अज्ञान के कारण उन्हें विरूपित कर देता है और करुणा को दया में या अधिक से अधिक दान में और कृतज्ञता को प्रतिदान की कामना में बदल देता है। धीरे-धीरे, थोड़ा-थोड़ा करके उसमें पहचान और प्रशंसा की क्षमता आती है। जब केवल चैत्य चेतना सत्ता में सर्वशक्तिमान हो जाती है तभी सब के लिए करुणा, जिन्हें सहायता की आवश्यकता होती है चाहे कोई भी क्षेत्र हो तथा उन सबके प्रति कृतज्ञता जो भागवत उपस्थिति तथा कृपा को अभिव्यक्त करते हैं चाहे वह किसी भी रूप में हो, सबमें अपनी मौलिक तथा ज्योतिर्मय शुद्धता में अभिव्यक्त होती है। तब करुणा के साथ कृपालुता का या कृतज्ञता के साथ किसी हेय भावना का लेश मात्र भी मिश्रण नहीं होता।

— श्रीमाँ

***

*भागवत कृपा को कृतज्ञता के साथ स्वीकार करने की क्या विधि है?*

आह! सबसे पहले तुम्हें इसकी आवश्यकता को महसूस करना होगा। यह सबसे महत्वपूर्ण बिन्दु है। यह कुछ आन्तरिक विनम्रता होती है जो भागवत कृपा के बिना तुम्हारी अपनी विवशता के प्रति तुम्हें अवगत कराती है कि वास्तव में इसके बिना तुम अपूर्ण और अशक्त हो। यह आरम्भ है। यह

अनुभव किसी व्यक्ति को भी अच्छी तरह हो सकता है। जो लोग कुछ नहीं जानते वे भी जब काफी कठिन परिस्थितियों में उलझ जाते हैं या उन्हें ऐसी समस्या का सामना करना पड़ता है जिसका समाधान करना ही होगा अथवा कोई ऐसा आवेग आ जाता है। तब वे किंकर्तव्यविमूढ़ हो जाते हैं। न उनका मन, न उनका संकल्प और न उनकी भावनाएं इस संकट में सहायता कर पाती हैं। वे नहीं जानते कि क्या करना चाहिये। तभी यह होता है। उनके अन्दर एक प्रकार की पुकार उठती है, पुकार उसके लिए जो उसके लिए कुछ कर सकता है जिसे वह स्वयं करने में असमर्थ है। व्यक्ति उस शक्ति की अभीप्सा करता है जो उस कार्य को करने में समर्थ है जिसे वह स्वयं नहीं कर सकता। यह पहली शर्त है। और तब यदि तुम इस बात के प्रति सचेतन हो जाओ कि केवल भागवत कृपा ही तुम्हें उस परिस्थिति से उबार सकती है जिसमें तुम उलझ गये हो, वही केवल शक्ति दे सकती है जिससे तुम संकटसे निकल सकते हो, तब बिलकुल सहज भाव से तुम्हारे अन्दर एक तीव्र अभीप्सा जागती है, एक ऐसी चेतना जो उद्घाटन में बदल जाती है। यदि तुम पुकार करो, अभीप्सा करो और यदि तुम प्रत्युत्तर पाने की आशा करो तब बिलकुल स्वभावतः भागवत कृपा के प्रति तुम अपने आप को उद्घाटित कर लोगे।

और बाद में तुम्हें इस पर बहुत ध्यान देना होगा (श्रीमाँ अपने ओठों पर उंगली रखती हैं) – कृपा तुम्हें प्रत्युत्तर देगी, कृपा तुम्हें कष्ट से मुक्त कर देगी, कृपा तुम्हारी समस्या का समाधान कर देगी या तुम्हें कठिनाई से बाहर निकाल देगी। किन्तु कठिनाई से बाहर आने पर यह न भूलो कि कृपा ने ही तुम्हें बचा लिया है। यह मत सोचो कि तुमने यह स्वयं कर लिया है। यह बहुत महत्वपूर्ण बिन्दु है। अधिकांश लोग कठिनाई से बाहर आते ही यह कहते हैं, 'आखिर मैंने अपने आप को कठिनाई से अच्छी तरह बचा लिया।' तब तुम कुछ नहीं प्राप्त करोगे। तुम्हें एक बार फिर एक भारी विपदा, कुछ भयानक कठिनाई की जरूरत पड़ेगी जिससे ऐसी मूर्खता से मुक्त हो सको और एक बार पुनः यह महसूस कर सको कि तुम बिलकुल असमर्थ हो। जब तक तुम यह सोचते हो कि तुम जो कुछ करते हो यह तुम्हारी अपनी क्षमता है तब सच

पूछो तुम एक दरवाजा नहीं बल्कि एक के बाद एक कितने ही दरवाजे बन्द कर देते हो। तुम अपने को एक किले में बन्द कर देते हो और वहाँ कुछ भी प्रवेश नहीं कर सकता। यह बहुत बड़ा दोष है, व्यक्ति जल्दी ही भूल जाता है। यह बिलकुल स्वाभाविक है कि व्यक्ति अपनी क्षमता से ही सन्तुष्ट रहता है।

*परन्तु श्रीमाँ, जब व्यक्ति यह सोचने का प्रयास करता है कि वह असमर्थ है तब कुछ ऐसी चीज है जो विश्वास करती है कि वह समर्थ है।*

आह! हाँ, सच्चा बनना बहुत कठिन होता है ... इसीलिए आघात पर आघात आने लगते हैं और कभी-कभी ये भयानक हो जाते हैं, क्योंकि यही एक मात्र चीज है जो तुम्हारी मूर्खता को खत्म करती है। आपत्तियों का यही औचित्य होता है। केवल तुम जब बहुत कष्टदायक स्थिति में होते हो और जब बहुत गहराई से तुम्हें कुछ प्रभावित करता है तब उससे वह मूर्खता कुछ पिघल जाती है। परन्तु जैसा तुम कहते हो जब कुछ पिघल जाता है तब भी कुछ थोड़ा सा अन्दर बच जाता है। और यही कारण है कि यह कष्ट बहुत लम्बे समय तक बना रहता है।

बहुत गहराई से यह जानने के लिए कि व्यक्ति कुछ नहीं है, जीवन में उसे कितने आघातों की जरूरत होती है, कि वह कुछ नहीं है, कि भागवत चेतना और कृपा के बिना कोई सत्ता नहीं होती। जिस क्षण से वह जानने लगता है, सब खत्म हो जाता है; सभी कठिनाइयाँ चली जाती हैं। जब व्यक्ति समग्र रूप से यह जान जाता है और ऐसा कुछ नहीं रहता जो विरोध करे... किन्तु उस क्षण तक... और इसमें काफी लम्बा समय लगता है।

— श्रीमाँ

## श्रीमाँ द्वारा कथित एक कथा

एक समय की बात है। एक भव्य महल था जिसके मर्मस्थल में एक रहस्यमय यज्ञ मंडप था जिसके द्वार को कभी किसी ने पार नहीं किया था। इतना ही नहीं, इसकी सबसे बाहरी दीर्घाएं भी मर्त्यों के लिए अगम्य थीं, क्योंकि महल अत्यन्त ऊँचे बादलों के ऊपर स्थित था और किसी भी युग में इसके मार्ग की जानकारी किसी को नहीं मिली थी।

यह सत्य का महल था।

एक दिन वहाँ एक पर्व का आयोजन किया गया, मनुष्यों के लिए नहीं बल्कि अत्यन्त भिन्न सत्ताओं के लिए, छोटे-बड़े देवताओं और देवियों के लिए। धरती पर उन्हें सदगुणों के नाम से सम्मानित किया जाता है। महल का द्वार मंडप एक विशाल सभाभवन था जिसकी चमकती दीवारें, फर्श, छतें असंख्य प्रज्वलित अग्नियों से देदीप्यमान थीं।

यह बुद्धि का सभा भवन था। धरातल के निकट प्रकाश बहुत मद्धिम था और इसमें सुन्दर गहरे नीलम की आभा थी किन्तु क्रमशः छत की ओर प्रकाश स्पष्ट होता जा रहा था, जहाँ से लटकती हीरों की चरखियाँ दीप वृक्षों के समान चकाचौंध करनेवाली असंख्य किरणें बिखेर रही थीं।

सद्गुण एक-एक कर पधारने लगे परन्तु शीघ्र ही अनुकूल समूहों में बंट गये और बहुत आनन्दित अनुभव करने लगे क्योंकि कम से कम एक बार ही सही, वे एक साथ मिले थे, क्योंकि प्रायः वे विश्व भर में, और जगतों में चारों ओर बिखरे हुए रहते हैं और इतनी प्रतिकूल सत्ताओं के बीच अकेले रहते हैं।

सच्चाई का पर्व पर शासन था। निर्मल जल के समान पारदर्शी वेशभूषा में वह सजीधजी थी। इसके हाथ में एक शुद्धतम स्फटिक था जिसके द्वारा चीजों को उसी रूप में देखा जा सकता है जैसा कि वे वास्तव में हैं न कि जैसा सामान्य रूप से प्रतीत होते लगते हैं क्योंकि वहाँ उनकी छवि बिना किसी विकृति के उसमें प्रतिबिम्बित होती है।

उसके निकट, दो विश्वासपात्र अभिभावकों के समान एक थी खड़ी विनम्रता एक साथ ही श्रद्धालु और स्वाभिमानी और दूसरा था साहस, ... जिसकी भौहें ऊँची, आँखें निर्मल, होंठ सुदृढ़ और स्मित, मनोभाव शान्त और कृतसंकल्प था। साहस के निकट उसके हाथ में अपना हाथ दिये एक नारी खड़ी थी पूर्ण रूप से आवृत जिसका कोई अंग दिखाई नहीं देता था किन्तु उसके आवरण की ओट से उसकी भेदक आँखें चमक रही थीं। यह थी बुद्धिमानी या विवेकशीलता। उन सब के बीच एक से दूसरे के पास आती-जाती हुई फिर भी हरेक के पास ही रहती-सी प्रतीत होती हुई, दानशीलता, जो एक साथ ही

चौकस और शान्त, सक्रिय फिर भी, पृथक-सी थी, समूहों के बीच से गुजरती हुई मृदुल श्वेत ज्योति बिखेर रही थी। वह ज्योति जो वह बिखेर रही थी वह उसकी अन्तरतम मित्र, अविभाज्य सहचरी, उसकी जुड़वां बहन न्यायशीलता की ओर से अधिकांश आँखों से अदृश्य एक कान्ति के माध्यम से आ रही थी। और दानशीलता के चारों ओर देदीप्यमान मार्गरक्षक थे दयालुता, धैर्य, भद्रता, उत्कण्ठा तथा अन्य अनेक। सबके सब वहाँ हैं या कम से कम वे ऐसा समझते हैं। परन्तु तभी अचानक, स्वर्ण द्वार पर एक नव आगन्तुक प्रकट होता है।

बहुत अनिच्छा के साथ द्वार रक्षकों ने जो प्रवेश द्वार पर नियुक्त थे उसे प्रवेश की अनुमति के लिए सहमति दी। इसके पूर्व उसे किसी ने नहीं देखा था और उसके व्यक्तित्व में ऐसा कुछ नहीं था जिससे वे प्रभावित हो सकें। वह वास्तव में युवा और छरहरी थी। उसकी श्वेत वेशभूषा बहुत सामान्य थी, लगभग दीन-हीन-सी। वह संकोच के साथ लज्जित-सी एक कदम आगे बढ़ी। तब स्पष्टतः अपने को एक विशाल और वैभवशाली जन सभा में मौजूद पाकर, और यह न जानते हुए कि किसके पास वह जाये, वह ठिठक जाती है।

अपनी सहचरियों के साथ एक संक्षिप्त विचार-विमर्श के बाद विवेकशीलता उनके अनुरोध पर नवागन्तुक की ओर आगे बढ़ती है। तब अपना गला साफ करती हुई, जैसा कि लोग लज्जित अनुभव करने पर ऐसा इसलिए करते हैं कि चिन्तन करने के लिए एक क्षण मिल जाये - वह उसकी ओर बढ़ी और बोली :

'हमलोग, जो यहाँ एकत्र हैं और एक-दूसरे को उनके नामों और विशेषताओं से जानते हैं, तुम्हारे आगमन पर चकित हैं, क्योंकि तुम हमलोगों के लिए अपरिचित हो अथवा कम से कम ऐसा लगता है कि इसके पूर्व हमलोगों ने तुम्हें कभी देखा नहीं। क्या कृपया तुम बताओगी कि तुम कौन हो।'

तब नवागन्तुक ने एक आह के साथ उत्तर दिया : 'आह! मुझे इस बात पर आश्चर्य नहीं हुआ कि मैं इस महल में अपरिचित-सी लगती हूँ, क्योंकि मुझे शायद ही कभी-कभार कहीं आमंत्रित किया जाता है।'

'मेरा नाम कृतज्ञता है।'

*CWM Vol. 2, p. 5* —श्रीमाँ

## 8 फरवरी 1913

हे प्रभु, तू मेरा आश्रय और मेरे लिए आशीर्वाद है। मेरा बल, स्वास्थ्य, मेरी आशा और मेरा साहस है। तू परम शान्ति है, अमिश्रित आनन्द है, पूर्ण प्रशान्ति है।

मेरी सम्पूर्ण सत्ता तेरे समक्ष अपरिमेय कृतज्ञता तथा अविराम आराधना के साथ साष्टांग प्रणत होती है; और वह आराधना मेरे हृदय और मन से तेरी ओर भारतवर्ष के इत्र की सुगन्ध के शुद्ध धूम्र के समान ऊपर उठती है। मनुष्यों में मुझे तेरा अग्रदूत बन जाने दे जिससे जो तैयार हैं वे सब उस परमानन्द का आस्वादन कर सकें जो तू अपनी अनन्त अनुकम्पा में मुझे प्रदान करता है, और तेरी शान्ति को धरती पर शासन करने दे।

प्रार्थना और ध्यान, पृ.15 —श्रीमाँ

***

## श्रीअरविन्द की समाधि के प्रति

तुझे, जो हमारे प्रभु का भौतिक आवरण रहा है, तुझे हम सब की अनन्त कृतज्ञता। तेरे समक्ष, जिसने हम सब के लिए इतना कुछ किया है, जिसने इतना कार्य किया है, संघर्ष किया है, इतना कष्ट झेला और इतनी आशा की है, इतना सहन किया है, तेरे समक्ष, जिसने हम सब के लिए समस्त संकल्प किया, समस्त प्रयास किया, तैयार किया, उपलब्ध किया, तेरे समक्ष, हम सब नतमस्तक होते हैं और याचना करते हैं कि हम सब उस सब को जिसके लिए हम तेरे ऋणी हैं एक क्षण के लिए भी कभी विस्मृत न कर दें।

9 दिसम्बर 1950 –श्रीमाँ

***

श्रीअरविन्द के प्रति अपनी कृतज्ञता व्यक्त करने के लिए हम सब उनकी शिक्षा का जीवन्त प्रमाण बनने की अपेक्षा और कुछ उत्तमतर नहीं कर सकते। —श्रीमाँ

# 4

# अध्यवसाय

**अध्यवसाय**
*एकदम अन्त तक जाने का निश्चय*
(श्रीमाँ द्वारा दिया गया पुष्प का आध्यात्मिक अर्थ तथा व्याख्या)
*Botanical name:*
*Calendula officinalis*

सबसे बढ़कर आवश्यक गुण है अध्यवसाय, लगन, सहिष्णुता और उसे क्या नाम दें? एक प्रकार की आंतरिक प्रफुल्लता जो निरुत्साहित न होने में, उदास न होने में और मुस्कुराहट के साथ सभी कठिनाइयों का सामना करने में तुम्हारा सहायक होता है। अंग्रेजी में एक शब्द है जो इस भाव को अच्छी तरह व्यक्त करता है, वह है 'चीयरफुलनेस' (Cheerfulness), प्रसन्नचित्तता। यदि तुम इसे अपने अंदर बनाये रखो तो तुम उन सब बुरे प्रभावों के साथ, जो तुम्हें प्रगति करने से रोकने का प्रयास करते हैं, प्रकाश के अंदर बहुत अच्छे तरीके से लड़ सकते व उनका अधिक अच्छे रूप में विरोध कर सकते हो।

*CWM Vol. 8, p. 23* —श्रीमाँ

*

सभी परिस्थितियों में अपने ऊपर मुस्कुराना जानना, अपने दुःखों और मोह-भंगों, महत्वाकांक्षाओं और पीड़ाओं, अपने क्रोध और विद्रोह पर मुस्कुरा सकना – यह स्वयं अपने ऊपर विजय पाने के लिए कितना सशक्त शस्त्र है!

सारभूत में अध्य़वसाय से ही कठिनाइयों पर विजय पाई जा सकती है, उनसे भाग कर नहीं। जो कोई अध्यवसायी है उसकी विजय निश्चित है। सबसे ज्यादा सहनशील विजयी होता है।

*

बिना सहनशीलता के किसी ने महानता हासिल नहीं की।

*

सच्चा उत्साह शांति से भरी सहनशीलता से आता है।

*

जब कर्म आनंद से जुड़कर उत्साह के साथ होते हैं तो यह जीवन का सामना करने का सबसे अच्छा रास्ता है।

*

सभी कठिनाइयों के होते हुए भी जो प्रसन्नतापूर्ण कार्य में अडिग रहता है, उसका बहुत मूल्य है।

*

भगवद् निर्देशन से किया गया प्रयास सभी बाधाओं को हटा देता है।

*

अध्यवसायी संकल्पित कार्य को, जब तक पूरा नहीं होता, अनवरत करता रहता है।

—श्रीमाँ

## विचारों पर विजय पाने के लिए अध्यवसाय

यह विजय पाने के लिए हमें अपने अंदर एक ऐसी मनोवृति पैदा करनी होगी जो वातावरण के विरुद्ध हो। हमें थोड़ा-थोड़ा करके हर रोज अपने मन को अपनी विचार-शक्ति की क्षमता के अनुसार उच्चतम, पवित्रतम, अधिक-से-अधिक निःस्वार्थ विचारों से भरना होगा। उन्हें प्रयास के साथ पर्याप्त रूप से जीवित-जाग्रत बनाना होगा ताकि जब कभी हमारे अंदर बाहर से गलत विचारों का प्रलोभन आये तो वे हमें जगा दें और हमारे ऊपर आक्रमण करने के लिए हमेशा तैयार छाया का सामना करने के लिए अपनी चौंधियानेवाली

ज्योति और भव्यता में उठ खड़े हों। आओ, हम अपने अंदर प्राचीन यज्ञाग्नि प्रज्वलित करें जो दिव्य मेधा का प्रतीक है, जिसे प्रकट करना हमारा कर्तव्य है।

यह काम एक दिन, एक महीने या एक साल में भी पूरा होनेवाला नहीं है। हमें संकल्प करना चाहिये और अध्यवसाय के साथ संकल्प करना चाहिये। अगर आप को यह मालूम हो कि इससे क्या लाभ होते हैं, अगर आप उस शान्ति, उस पूर्ण निरभ्र शांति से परिचित हों जो धीरे-धीरे हमारे अंदर की उत्तेजना और अशांति का स्थान ले लेती है, जो कामना से पैदा होनेवाली चिंता और भय का स्थान ले लेती है, तो आप बिना संकोच काम में लग जायेंगे।

और फिर शुद्ध और सशक्त विचारों के समन्वय का निर्माण केवल हमें ही अपने सुख तक नहीं पहुंचाता। ज्वाला जितनी स्पष्ट और ऊँची होगी उतना ही अधिक प्रकाश अपने चारों ओर फैलायेगी।

हम जिस तारे को अपने अंदर से होकर चमकने देंगे, वह अपने उदाहरण से ऐसे ही तारों को जन्म देगा। सौभाग्यवश, केवल अन्धकार और अज्ञान ही नहीं, ज्ञान और प्रकाश भी संक्रामक हो सकते हैं।

और फिर हम अपने उच्चतम विचारों के बारे में सचेतन रहने के लिए जितना ध्यान रखेंगे, वह हमें निरंतर अपने विचारों का संयम करने के लिए बाधित करेगा।

—श्रीमाँ

## पूर्णता प्राप्ति के लिए अध्यवसाय

*विश्व में मेरा क्या स्थान है ?*

हम में से प्रत्येक को एक भूमिका निभानी है, एक कार्य करना है, प्रत्येक का अपना एक स्थान है जिसे केवल वही ले सकता है।

परन्तु यह कार्य हमारी सत्ता की सबसे अधिक केन्द्रीय गहराई की बाह्य अभिव्यक्ति है, इसका निश्चित रूप हम तभी जान सकते हैं जब हम अपने

अंदर की इस गहराई के प्रति सचेतन हो जायें।

सच्चे परिवर्तन की अवस्था में कभी-कभी ऐसा होता है। जिस क्षण रूपांतरकारी प्रकाश हमें दिखायी देता है और उसके प्रति निर्बाध रूप से हम अपने-आपको अर्पित कर देते हैं, उसी समय अकस्मात, किन्तु बिलकुल स्पष्ट रूप से हम यह भी जान जाते हैं कि हमें क्यों बनाया गया है और पृथ्वी पर हमारे अस्तित्व का क्या उद्देश्य है।

पर यह प्रकाश दुर्लभ है। यह हमारे अंदर प्रयत्नों और मनोभावों की पूरी शृंखला से निर्धारित होता है। इन मनोभावों को, इन आत्मिक अवस्थाओं को प्राप्त करने तथा बनाये रखने के आवश्यक साधनों में से एक यह है कि हम प्रतिदिन अपने समय का कुछ भाग निःस्वार्थ कार्य में लगायें। प्रतिदिन हम कोई ऐसा काम करें जो दूसरों के लिए उपयोगी हो।

जब तक हमें यह नहीं मालूम हो जाता कि हमारे लिए कौन-सा विशेष काम नियत है, हमें कोई ऐसा कार्य ढूँढ लेना चाहिये जो हमारी वर्तमान क्षमताओं तथा सदिच्छा को श्रेष्ठतम रूप में प्रकट कर सके।

तब हमें उस कार्य में ईमानदारी और अध्यवसाय के साथ लग जाना चाहिये, मन में यह जानते हुए कि यह एक सामयिक अवस्था मात्र है और हमारे आदर्श तथा हमारी शक्तियों के विकसित होने पर हम निश्चय ही एक दिन स्पष्ट रूप से देख पायेंगे कि हमें कौन-सा कार्य संपन्न करना है। इस क्षेत्र में जो व्यक्ति मार्ग ढूंढ रहा होता है वह प्रायः दो विरोधी भूलों में से एक-न-एक में पड़ जाता है :

(1) एक भूल यह होती है कि वह अपनी इच्छाओं को वास्तविक सत्य समझने लगता है, अर्थात् अपनी सामर्थ्यों और योग्यता के सम्बन्ध में पहले से ही धारणा बना लेता है। वह सोचता है कि उस स्थान और दायित्व को वह उसी समय पूरा कर सकता है जबकि वास्तव में उसका ठीक से निर्वाह करने के लिए वर्षों के नियमित उद्योग और अध्यवसाय की आवश्यकता होती है।

(2) यह भूल होती है कि वह अपनी सुप्त शक्तियों के बारे में गलत धारणा बना लेता है और गंभीर अभीप्सा के होते हुए भी स्वेच्छा से किसी ऐसे धंधे

में सीमित हो जाता है जो उसकी योग्यता से बहुत नीची श्रेणी का होता है। यह काम उसके अंदर के प्रकाश को धीरे-धीरे बुझा देनेवाला होता है जबकि वह प्रकाश दूसरों पर भी अपनी किरणें छिटका सकता था।

आरम्भ में इन चट्टानों के बीच अपना रास्ता बनाना और संतुलित तथा मध्यम मार्ग खोजना अवश्य ही कठिन प्रतीत होता है।

परन्तु एक ऐसा अचूक दिग्दर्शक यन्त्र है जिसके सहारे हम काम कर सकते हैं :

1. हम जो कुछ करें अपने दिखावे के लिए न करें। जब हम यश और सम्मानवाले अपने समकालीनों की प्रशंसा की इच्छा करने लगते हैं तब शीघ्र ही उनकी ओर झुकने की ओर बाध्य हो जाते हैं। जब हम आत्मप्रशंसा के अवसर ढूंढने लगते हैं तब सहज ही अपने-आपको ऐसा मानने लगते हैं जैसे हम वास्तव में हैं नहीं, और यह चीज हमारे आदर्श को सबसे अधिक धुंधला बनानेवाली होती है।

2. मैं बड़ा बनना चाहता हूं, बड़ा बनने के लिए कौन-सा कार्य अनुकूल होगा, यह प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप में कभी नहीं कहना चाहिये।

3. इसके विपरीत हमें कहना चाहिये "निश्चय ही कोई ऐसा कार्य है जिसे मैं औरों की अपेक्षा अधिक अच्छी तरह कर सकता हूँ क्योंकि यद्यपि भागवत शक्ति सब के अंदर सार रूप में एक ही है तथापि हममें से प्रत्येक व्यक्ति उस शक्ति के एक-एक विशेष रूप की अभिव्यक्ति है। यह कार्य कितना भी छोटा, कितना भी साधारण क्यों न हो, पर मुझे अपने-आपको उसी के लिए निवेदित करना है। उसे ढूंढ निकालने के लिए मैं अपनी रुचियों, प्रवृतियों और पसंदों का निरीक्षण और विश्लेषण करूंगा, फिर वही कार्य मैं करूंगा। उसे करने में मुझे न तो अभिमान होगा, न अतिदीनता का भाव, और लोग उसके बारे में क्या सोचते हैं, इसकी भी मुझे परवाह नहीं होगी। वह कार्य मैं ऐसे करता रहूंगा जैसे सांस लेता हूँ, जिस भांति पुष्प सहजता से, स्वभाव से सुरभि फैलाता है, क्योंकि मैं उसके अतिरिक्त कुछ कर ही नहीं सकता।"

4. जिस समय हम अपने अंदर की सारी अहमात्मक इच्छाओं को, सारे

व्यक्तिगत या स्वार्थमय उद्देश्यों को नष्ट करने में सफल हो जाते हैं — चाहे यह एक क्षण के लिए ही हो — उसी क्षण हम अपने-आप को इस आंतरिक सहजता के प्रति, इस गंभीरतर प्रेरणा के प्रति अर्पित कर सकते हैं जिससे हम विश्व की जीवंत तथा प्रगतिशील व्यक्तियों के साथ सम्बन्ध स्थापित कर पायें।

5. ज्यों-ज्यों हम स्वयं पूर्ण होते जायेंगे, त्यों-त्यों स्वभावतः हमारे कार्य की धारणा भी उसी अनुपात में पूर्णतर होती जायेगी और इस पूर्णता को प्राप्त करने के लिए हमें अपनी ओर से कुछ उठा नहीं रखना चाहिये। किन्तु हमारा कर्म सदा तथा अधिकाधिक आनंदपूर्ण और स्वतः स्फूर्त होना चाहिए, जैसे कि निर्मल स्रोत से जल प्रवाहित होता है।

—श्रीमाँ

## अध्यवसाय : ठीक अंत तक जाने का निश्चय

जेनेवा का रहनेवाला प्रसिद्ध नाविक, कोलम्बस, स्पेन से जहाज लेकर पश्चिम के अज्ञात समुद्रों को पार करने निकला। दिन बीत गये, अपने साथियों की बड़बड़ाहट को सहते हुए वह एक नयी पृथ्वी को खोज निकालने की धुन में दृढ़ रहा। विलम्ब हुए, कई कठिनाइयां उपस्थित हुईं पर जब तक वह अमरीका के किनारे द्वीपों तक नहीं पहुंचा, उसने दम नहीं लिया। इस प्रकार उसने एक नया महाद्वीप खोज निकाला। वह अपने साथियों से किस बात की आशा रखता था ?

वह उनसे केवल यह चाहता था कि वे धैर्य रखें। उनका कर्तव्य केवल इतना था कि वे उस पर भरोसा रखें। और नम्रतापूर्वक उसकी आज्ञा के अधीन रहें। पर इस लक्ष्य-प्राप्ति के लिए स्वयं उसके अंदर किस वस्तु का होना आवश्यक था? उसमें उस अक्षुण्ण उत्साह और गंभीर लगन की आवश्यकता थी जिसे हम अध्यवसाय कहते हैं।

—श्रीमाँ

*योग में ऐसी शक्तिकी आवश्यकता होती है जो बिना थके, बिना निराश हुए, बिना हतोत्साहित या अधीर हुए, बिना अपने लक्ष्य अथवा निश्चय का त्याग करते हुए प्रयास करती रहे और कठिनाई या कष्ट झेलती रहे।*

*श्रीअरविन्द*

# 5
# अभीप्सा

**अभीप्सा**
*असंख्य, दुराग्रही,*
*अपने-आप को*
*बिना थके*
*दोहराती रहती है।*
*(श्रीमाँ द्वारा दिया गया*
*पुष्प का आध्यात्मिक*
*अर्थ तथा व्याख्या)*
*Botanical name:*
Nyctanthes
arbor-tristis

## वेद में अभीप्सा

समानी व आकूतिः समाना हृदयानि वः ।
समानमस्तु वो मनो यथा वः सुसहासति ।।

ऋग्वेद 10/191/4

तुम सबकी अभीप्सा एक और समान हो, तुम सबके हृदय संयुक्त हों, तुम सबके मन एक समान हों — जिससे तुम सबमें घनिष्ठ मैत्री हो सके ।

CWSA Vol. 16/447 —श्रीअरविन्द

उत द्वार उशतीर्वि श्रयन्तामुत देवां उशत आ वहेह ।

ऋग्वेद 7/17/1

अभीप्सा का द्वार खुल जाने दो, अभीप्सु देवों को यहाँ ले आओ ।

*CWSA Vol. 16/328* —श्रीअरविन्द

वैदिक ऋषियों की अभीप्सा थी मनुष्य की सत्ता की समृद्धि और विस्तार, उसके जीवन-यज्ञ में देवों का जन्म तथा रूपायन, शक्ति, सत्य, ज्योति, आनन्द की वृद्धि जिनकी वे शक्तियाँ हैं जब तक अपनी सत्ता के परिवर्द्धित तथा सदा उद्घाटनशील विश्वों के माध्यम से मनुष्य की आत्मा उदित न हो जाये, उसकी पुकार पर भागवत द्वारों के पट खुल न जायें तथा स्वर्ग व धरती से परे एक भागवत सत्ता के परमानन्द में प्रवेश न कर जाये । यह आरोहण अंगिरस ऋषियों का रूपक है ।

*The Secret of The Veda, p.133* —श्रीअरविन्द

## मानवीय अभीप्सा

मनुष्य के जाग्रत विचारों में जो उसकी प्राचीनतम तल्लीनता थी यानी उसने जिस महान लक्ष्य की अभीप्सा की थी वही आज भी अपरिहार्य और चरम लक्ष्य प्रतीत होता है, क्योंकि यह संशयवाद के दीर्घतम युगों के बाद भी विद्यमान रहता है और जब-जब इसे निर्वासित किया जाता है यह पुनः लौट आता है । यह लक्ष्य, जहाँ तक उसके विचारों की पहुँच संभव हो सकती है — उच्चतम भी है । यह उसके समक्ष अपने आप को अभिव्यक्त करता है भगवान के भविष्य कथन, पूर्णता के आवेग, विशुद्ध सत्य तथा अमिश्र आनन्द की खोज और प्रच्छन्न अमरता के बोध के रूप में । मानव ज्ञान की प्राचीन उषाएं इस सतत अभीप्सा की साक्षी रही हैं । आज हम देखते हैं कि मानवता प्रकृति के बाह्य तथ्यों के विजयमान विश्लेषण से परितृप्त तो है परन्तु सन्तुष्ट नहीं है और इसलिए वह आदिम अभीप्साओं की ओर पुनः लौटने की तैयारी कर रही है । भगवान, ज्योति, मुक्ति, अमृतत्व के रूप में जो प्रज्ञा का प्राचीनतम सूत्र था, वह इसका अन्तिम सूत्र होने का भी दावा कर रहा है ।

*The Life Divine, p.3* —श्रीअरविन्द

## योग-साधना में अभीप्सा का स्थान

... योग में भी भगवान ही साधक हैं और साधना भी; उन्हीं की शक्ति अपनी ज्योति, क्षमता, ज्ञान, चेतना, आनन्द के साथ आधार पर क्रिया करती है और जब यह आधार उनकी ओर उद्‌घाटित होता है तब वे ही अपनी इन दिव्य क्षमताओं को उसमें भर देते हैं जिससे साधना सम्भव हो पाती है । किन्तु जब तक निम्न प्रकृति सक्रिय है, तब तक साधक की व्यक्तिगत चेष्टा आवश्यक रहती है ।

यह आवश्यक व्यक्तिगत चेष्टा है अभीप्सा, त्याग तथा समर्पण का त्रिविध श्रम :

एक ऐसी अभीप्सा जो सतर्क, अविराम, अखण्ड हो – मन में उसी का संकल्प, हृदय में उसी की खोज, प्राणमय पुरुष की सहमति, देह की चेतना और प्रकृति की उसी की ओर उद्‌घाटित और नम्य करने की दृढ़ इच्छा ।

*The Mother, pp. 8-9* —श्रीअरविन्द

## निष्कपट अभीप्सा आवश्यक

*मधुर माँ, अब, जबकि अतिमानस अवतरित हो चुका है, क्यों नहीं व्यक्ति बौद्धिक मन से सीधे अतिमन में प्रवेश कर सकता ?*

किसने कहा कि व्यक्ति ऐसा नहीं कर सकता ?

श्रीअरविन्द यहाँ यह बता रहे हैं कि अतिमानस के साथ सम्पर्क में आने के लिए तथा इसकी अभिव्यक्ति के लिए आधार तैयार करने के लिए क्या करना चाहिये; किन्तु अब क्योंकि यह पार्थिव वातावरण में प्रवेश कर चुका है, मैं नहीं समझती क्यों केवल एक ही सुनिश्चित प्रक्रिया इसकी अभिव्यक्ति में इस पर लादी जाये । यदि यह एक ऐसे यंत्र को सीधे प्रदीप्त करने का चुनाव करे जिसे यह उपयुक्त या तैयार या अनुकूल समझता हो, तब मैं नहीं

समझती क्यों इसे नहीं करना चाहिये ।...

मैं समझती हूँ कि सभी सम्भावनाएं अनुमानित की जा सकती हैं तथा सभी निष्कपट अभीप्सा तथा पूर्ण समर्पण को प्रत्युत्तर मिलेगा और प्रक्रिया, साधन, परिवर्तन, रूपान्तरण के स्वरूप असंख्य होंगे, चीजें एक ही विशेष तरीके से बिलकुल नहीं होंगी, अन्यथा नहीं होंगी ।

वास्तव में, कोई भी चीज, प्रत्येक चीज जो भी अतिमानसिक चेतना और प्रकाश का कोई कण भी अथवा कोई पक्ष-विशेष ग्रहण करने के लिए तैयार है, स्वतः उसे प्राप्त हो जायेगा । और इस चेतना और ज्योति के प्रभाव असंख्य होंगे, क्योंकि प्रत्येक व्यक्ति की सम्भावनाओं और क्षमता के प्रति उसकी अभीप्सा की निष्कपटता के अनुसार वे निश्चय ही अनुकूल बना लिये जायेंगे ।

समर्पण जितना अधिक पूर्ण तथा अभीप्सा जितनी अधिक गहन होगी, परिणाम उतना ही अधिक पूर्ण और गहन हो सकता है । किन्तु अतिमानसिक क्रिया का प्रभाव अपनी अभिव्यक्ति में अनगिनत होगा – बहुविध, असंख्य, अनन्त रूप से विविध जो आवश्यक नहीं कि एक निश्चित प्रणाली का अनुसरण करे जो सबके लिए वही हो । यह असम्भव है । कारण, यह अतिमानसिक चेतना की प्रकृति के ही प्रतिकूल है ।

वातावरण की गुणवत्ता ही परिवर्तित हो गई है ।

परिणाम को अनन्त रूप से विविध होना ही होगा, किन्तु इन्द्रियगोचर होगा । कहने का अर्थ है कि अतिमानसिक क्रिया के परिणामों तथा सामान्य गतियों के परिणामों में अन्तर करना सम्भव होगा, क्योंकि उनकी प्रकृति विशेष प्रकार की होगी ।

परन्तु इसका अर्थ यह नहीं कि कोई भी व्यक्ति, किसी भी क्षण और किसी भी तरह अचानक एक अतिमानसिक प्रतिभावान बनने जा रहा है । ऐसी आशा नहीं की जा सकती ।

*CWM Vol. 8, p.177* —श्रीमाँ

## क्या निश्चेतना अभीप्सा करती है ?

*(एक अन्य शिष्य) क्या निश्चेतना चेतन बनने के लिए अभीप्सा करती है?*

नहीं । निश्चेतना में भगवान ही चेतना में भगवान के लिए अभीप्सा करते हैं । कहने का अर्थ है कि भगवान के बिना कोई अभीप्सा नहीं । निश्चेतना में छिपी चेतना के बिना यह सम्भव नहीं है कि निश्चेतना को चेतना में परिवर्तित किया जा सके । किन्तु, क्योंकि निश्चेतना के मर्मस्थल में भागवत चेतना मौजूद है इसीलिए तुम अभीप्सा करते हो और आवश्यक रूप से — वे यही कहते हैं — स्वतः यंत्रवत् बलिदान किया जाता है । और यही कारण है जब व्यक्ति कहता है, "तुम अभीप्सा नहीं करते, भगवान ही करते हैं, तुम प्रगति नहीं करते, भगवान ही करते हैं, तुम सचेतन नहीं रहते भगवान ही सचेतन रहते हैं" — ये खोखले शब्द नहीं हैं, यह तथ्य है । और यह केवल तुम्हारा अज्ञान तथा तुम्हारी निश्चेतना ही है जो इसे अनुभव करने से तुम्हें रोकती है । (ध्यान)

*CWM Vol. 8, p.79* —श्रीमाँ

अभीप्सा हमेशा अग्निशिखा के समान ऊपर उठती है और अपने साथ वह चीज वहन करती है जो बनने की व्यक्ति कामना करता है या जो करने या जिसे प्राप्त करने की चाह उसमें होती है । मैं "कामना" शब्द का प्रयोग कर रही हूँ, किन्तु वास्तव में यहाँ "अभीप्सा" शब्द का प्रयोग होना चाहिये, क्योंकि इसमें कामना का न तो गुण है न रूप ।

यह सचमुच संकल्प की एक बहुत बड़ी शोधक ज्वाला है, और अपने केन्द्र में यह वह चीज वहन करती है जो परिपूर्ण होना चाहती है ।

*CWM Vol. 5, p.140* — श्रीमाँ

अभीप्सा मस्तिष्क से नहीं आती; यद्यपि इसका रूपायन एक विचार द्वारा

होता है, फिर भी, यह हृदय से ही एक लपट या अग्निशिखा के समान ऊपर उठती है । मैं नहीं जानती कि तुमने श्रीअरविन्द द्वारा लिखित वेदों पर रचनाएं पढ़ी हैं या नहीं । वे एक स्थान पर समझाते हैं कि ये स्तोत्र मन से नहीं लिखे गये । वे प्रार्थनाएं नहीं हैं जैसा कि व्यक्ति सोचता है, बल्कि एक अभीप्सा की अभिव्यक्ति हैं जो एक आवेग या प्रेरणा थी, हृदय से प्रस्फुटित होती ज्वाला के समान (यद्यपि यह "हृदय" नहीं बल्कि सही शब्द में, सत्ता का मनोवैज्ञानिक केन्द्र है) । वे शब्द "सोच कर" नहीं बनाये गये, उन्हें अनुभूति में नहीं उतारे गये, अनुभूति पूर्णतः सुनिश्चित, यथातथ्य, अपरिहार्य शब्दों में आयी — उन्हें परिवर्तित नहीं किया जा सकता था । यही अभीप्सा की प्रकृति है : तुम्हें इसे रूपायित करने की जरूरत नहीं पड़ती, यह एक तैयार अग्निशिखा के समान उछल कर ऊपर आ जाती है । और यदि शब्द होते हैं (कभी-कभी कोई शब्द नहीं होता) तब उन्हें बदल नहीं सकते : तुम एक शब्द के स्थान पर दूसरा शब्द नहीं रख सकते, प्रत्येक शब्द बिलकुल सही होता है । जब अभीप्सा रूपायित होती है, आकार ग्रहण करती है तब यह होती है सुस्पष्ट, अन्तिम, परिवर्तन की किसी संभावना के बिना । और यह हमेशा वह चीज होती है जो ऊपर उठती है और अपने को अर्पित कर देती है जबकि कामना की प्रकृति होती है चीजों को अपनी ओर खींचने की ।

*CWM Vol.4, p.136* —श्रीमाँ

## क्या अभीप्सा के द्वारा श्रद्धा आ सकती है ?

क्या ? श्रद्धा अभीप्सा के द्वारा ? ऐसा हो सकता है, क्योंकि सहज रूप से इसे प्राप्त करना दुर्लभ है, जन्मजात । बहुत कम लोग ऐसे भाग्यशाली होते हैं जिनमें सहज निष्ठा हो । परन्तु यदि व्यक्ति अपनी अभीप्सा में सच्चा हो तब उसे प्राप्त कर लेता है । अभीप्सा हर चीज ला सकती है यदि यह सच्ची और अखण्ड हो । व्यक्ति में, उसके अन्तःकरण में श्रद्धा का एक लघु तत्व हमेशा रहता है चाहे वह श्रद्धा अपने माता-पिता के कथनों में हो अथवा उन पुस्तकों

में जो उसने अध्ययन किया है । आखिर तुम्हारी सारी शिक्षा इसी प्रकार की श्रद्धा पर आधारित है । जिन लोगों ने तुम्हें शिक्षित बनाया है उन्होंने तुम्हें कुछ चीजें बतायी हैं । तुम्हारे पास उनकी जाँच करने का कोई साधन न था, क्योंकि तुम बहुत छोटे थे और तुम्हें कोई अनुभव न था । किन्तु उन्होंने तुम्हें जो कुछ बताया उसमें तुम्हें श्रद्धा है और उसी श्रद्धा पर तुम आगे बढ़ते हो । अतः प्रत्येक व्यक्ति में श्रद्धा का एक लघु अंश होता है और उसे वर्धित करने के लिए व्यक्ति अपनी अभीप्सा का उपयोग कर सकता है ।

*CWM Vol.6, p.394* — श्रीमाँ

## अभीप्सा क्या है ?

अभीप्सा एक तीर के समान है इस तरह (संकेत) । अतः तुम अभीप्सा करते हो, उत्सुकता से समझना चाहते हो, जानना, सत्य में प्रवेश करना चाहते हो । हाँ, और तब उस अभीप्सा से तुम यह करते हो (संकेत) । तुम्हारी अभीप्सा ऊपर उठती है, उठती है, सीधी ऊपर उठती है, अत्यन्त बलशाली और तब यह टकराती है एक प्रकार की... कैसे कहें ?... वहाँ एक ढक्कन जैसी चीज से, लोहे जैसा सख्त और बहुत मोटा और यह उसके पार नहीं जा पाती । और तब तुम कहते हो, "देखो, अभीप्सा करने का लाभ क्या है? इससे कोई लाभ नहीं होता । मुझे सख्त चीज मिलती है और मैं उसे पार नहीं कर सकता ।" किन्तु, तुम पानी की बून्द के बारे में जानते हो जो चट्टान पर गिरती है। वह दरार बना कर ही दम लेती है । यह ऊपर से नीचे तक चट्टान को काट देती है । तुम्हारी अभीप्सा पानी की एक बून्द है जो नीचे गिरने के बदले ऊपर उठती है । अतः ऊपर उठने के कारण यह चोट करती है, चोट, चोट और एक दिन यह ऊपर उठकर दरार बना देती है । और जब यह दरार बना लेती है तब अचानक इस ढक्कन से उछल कर बाहर निकल पड़ती है और ज्योति की विशालता में प्रवेश करती है, और तुम कहते हो, "आह, अब मैं समझता हूँ ।"

*CWM Vol.7, p.235* — श्रीमाँ

## अभीप्सा के बारे में कुछ प्रश्नों के श्रीअरविन्द द्वारा दिये गये उत्तर

***प्रश्न : आध्यात्मिक अभीप्सा का अर्थ क्या है ?***

उत्तर : इसका अर्थ है आध्यात्मिक वस्तुओं, आध्यात्मिक अनुभूति, आध्यात्मिक सिद्धि, भगवान के प्रति अभीप्सा ।

***प्रश्न : क्या संकल्प और अभीप्सा एक ही चीज है ?***

उत्तर : नहीं, बिलकुल नहीं । अभीप्सा भगवान के लिए पुकार है, — संकल्प सचेतन शक्ति का प्रकृति पर दबाव है ।

***प्रश्न : क्या प्रार्थना और अभीप्सा में समानता है ?***

उत्तर : प्रार्थना अभीप्सा की अभिव्यक्ति है या हो सकती है । क्योंकि कुछ प्रार्थनाएं ऐसी भी हैं जो केवल कामना को ही व्यक्त करती हैं — जैसे धन के लिए प्रार्थना, सांसारिक सफलता के लिए प्रार्थना, इत्यादि ।

***प्रश्न : अभीप्सा और उद्‌घाटन में अन्तर क्या है ?***

उत्तर : उनमें कोई समानता नहीं है केवल यह छोड़ कर कि अभीप्सा उद्‌घाटन लाती है । उद्‌घाटन का अर्थ है कि चेतना सत्य अथवा भगवान के प्रति खुल जाती है जो अभी बन्द है — यह ग्रहणशीलता की स्थिति की ओर संकेत करता है । अभीप्सा सत्ता में एक पुकार है, यह उद्‌घाटन नहीं है ।

***प्रश्न : क्या प्राण से उठती हुई अभीप्सा और हृदय से उठती हुई अभीप्सा — दोनों की प्रकृति एक होती है ?***

उत्तर : नहीं, प्राणिक अभीप्सा गत्यात्मक होती है, जीवनी-शक्ति से एक पुकार

है । हृदय की अभीप्सा या तो भावनात्मक होती है या चैत्य ।

***प्रश्न : क्या भिन्न-भिन्न साधकों में उनकी प्रकृति के अनुसार अभीप्सा की शक्ति में अन्तर होता है ?***

उत्तर : नहीं, सबमें अभीप्सा की एक ही शक्ति होती है । केवल शुद्धता, तीव्रता तथा उद्देश्य में यह भिन्न होती है ।

*प्रश्न : क्या दुर्बल संकल्प का व्यक्ति केवल अभीप्सा द्वारा साधना में प्रगति करेगा ?*

उत्तर : नहीं, उसे संकल्प शक्ति बढ़ानी होगी अथवा उच्चतर शक्ति को अपने अन्दर साधना करने के लिए बुलाना पड़ेगा ।

***प्रश्न : क्या अभीप्सा व्यक्ति की दुर्बल संकल्प-शक्ति को सबल बना सकती है ?***

उत्तर : हाँ, यह कर सकती है — अपने अन्दर भागवत संकल्प का आवाहन कर।

***प्रश्न : अभीप्सा कभी मन्द और कभी तीव्र क्यों हो जाती है ?***

उत्तर : यह प्रत्येक साधक के साथ होता है । प्रकृति हमेशा तीव्र गति से नहीं जा सकती ।

***प्रश्न : यदि प्रकृति हमेशा तीव्र गति से नहीं जा सकती तब हमें निरन्तर अभीप्सा करते रहने के लिए क्यों कहा जाता है ?***

उत्तर : यदि तुम निरन्तर अभीप्सा न करते रहो तब प्रकृति अपनी पुरानी निम्न

आदतों में पिछड़ कर डूब जायेगी ।

***प्रश्न : क्या एक साधक, जो न तो तीव्र अभीप्सा और न अपनी प्रकृति की कठिनाइयों का प्रचण्ड विरोध अनुभव करता है — साधना में आगे बढ़ सकेगा ?***

उत्तर : मैं समझता हूँ कि इसका अर्थ है कि वह केवल धीमी गति से प्रगति करेगा ।

***प्रश्न : क्या साधक के लिए आरम्भ से अभीप्सा की शक्ति के द्वारा पूर्ण रूप से भगवान की सिद्धि प्राप्त करना सम्भव है ?***

उत्तर : यदि चैत्य और आध्यात्मिक अभीप्सा की पूर्ण शुद्धता हो तब ऐसा हो सकता है — किन्तु ऐसा विरले ही होता है ।

***प्रश्न : मैं महसूस करता हूँ कि अभीप्सा भी श्रीमाँ के संकल्प और उनकी कृपा से ही वर्धित होती है । क्या ऐसा नहीं है ?***

उत्तर : हाँ, किन्तु नहीं, यदि तुम अभीप्सा न करो ।

***प्रश्न : आपने मुझे अविच्छिन्न अभीप्सा करने का आदेश दिया है । किन्तु मैं देखता हूँ कि श्रीमाँ की शक्ति ही मुझमें अभीप्सा को प्रज्वलित करती, सुदृढ़ करती और वर्धित करती है । तब मेरी ओर से व्यक्तिगत प्रयास करने की क्या आवश्यकता रह गई ?***

उत्तर : यह सच है कि श्रीमाँ की शक्ति ही तुम्हारे अन्दर अभीप्सा करती है, किन्तु यदि व्यक्तिगत चेतना अपनी स्वीकृति न दे तब **शक्ति** कार्य नहीं करती। यदि व्यक्तिगत चेतना भगवान की ओर निरन्तर मदद के लिए निहारती रहे और उसे कार्य करने की स्वीकृति दे तब अभीप्सा तथा शक्ति की क्रिया भी

निरन्तर होती रहेगी ।

***प्रश्न : क्या यह सच है कि यदि व्यक्ति में सच्ची अभीप्सा हो तब भगवान उसे उसमें अपने अवतरण के लिए एक योग्य पात्र बनाते हैं भले ही उसका मन अज्ञानी और सीमित हो ?***

उत्तर : हाँ — केवल उसका मन छोटा तथा संकीर्ण न हो और न उसे अपनी संकीर्णता से आसक्त होना चाहिये ।

***प्रश्न : क्या यह सच है कि सत्संग से भगवान के लिए अभीप्सा उत्पन्न होती और वर्धित होती है ?***

उत्तर : हाँ ।

*Elements of Yoga pp. 8-15* —श्रीअरविन्द

श्रीमाँ की निम्नलिखित वार्ता Elements of Yoga पुस्तक में श्रीअरविन्द द्वारा दिये गये अभीप्सा सम्बन्धी एक प्रश्न के उत्तर पर आधारित है :

***प्रश्न : मैं इस प्रश्न का उत्तर अच्छी तरह समझ नहीं पाया — "क्या अभीप्सा की शक्ति भिन्न-भिन्न साधकों में उनकी प्रकृति के अनुसार भिन्न-भिन्न होती है ?" (श्रीअरविन्द का उत्तर : "नहीं, अभीप्सा की सबमें एक ही शक्ति होती है; यह केवल शुद्धता, तीव्रता तथा उद्देश्य में भिन्न होती है ।")***

उत्तर : आह ! हाँ ।

देखो, मैं समझती हूँ कि प्रश्न को ठीक से उपस्थित नहीं किया गया है। जिसने यह प्रश्न किया शायद वह कहना चाहता था "अभीप्सा का प्रभाव" और उसने कहा "शक्ति" । यानी प्रत्येक में अभीप्सा की, चाहे कोई भी हो, एक ही शक्ति होती है । किन्तु इस अभीप्सा का प्रभाव भिन्न-भिन्न होता है । कारण, अभीप्सा अभीप्सा ही होती है, यदि तुममें अभीप्सा है, इसमें अपने

आप ही एक शक्ति है । केवल, यह अभीप्सा प्रत्युत्तर चाहती है और यह उत्तर, प्रभाव, जो अभीप्सा का परिणाम है, हरेक व्यक्ति पर निर्भर करता है, क्योंकि यह उसकी ग्रहणशीलता पर निर्भर है । मैं इस प्रकार के बहुत लोगों को जानती हूँ : वे कहते है, "आह ! किन्तु मैं सब समय अभीप्सा करता हूँ, फिर भी कुछ मिलता नहीं ।" यह असम्भव है कि उन्हें कुछ मिलता नहीं । इस अर्थ में कि उत्तर अवश्य आयेगा । किन्तु वे कुछ नहीं प्राप्त करते । उत्तर आता है परन्तु वे ग्रहणशील नहीं हैं, अतः वे कुछ नहीं पाते ।

कुछ ऐसे लोग होते हैं जिनमें प्रचुर मात्रा में अभीप्सा होती है । वे शक्ति को पुकारते हैं । शक्ति उनके पास आती है — उनमें गहराई से प्रवेश भी करती है — और वे इतने अचेतन होते हैं कि वे इसे जानते तक नहीं । ऐसा सचमुच प्रायः ही होता है । उनकी निश्चेतना की स्थिति ही उस शक्ति को महसूस करने से भी रोकती है जो उनमें प्रवेश कर चुकी है । यह उनमें प्रवेश करती है और अपना कार्य करती है । मैं उन लोगों को जानती थी जो क्रमशः रूपान्तरित कर दिये गये, फिर भी वे इतने अचेतन थे कि वे इसके बारे में जानते तक नहीं थे । चेतना बाद में आती है — बहुत बाद में । दूसरी ओर, कुछ ऐसे लोग होते हैं जो अधिक शान्त और निष्क्रिय होते हैं, अधिक उद्‌घाटित, अधिक सतर्क, यहाँ तक कि थोड़ी-सी भी शक्ति अन्दर आ जाये तब शीघ्र जान जाते हैं और इसका पूरा उपयोग करते हैं ।

जब तुम्हारे अन्दर अभीप्सा होती है, बहुत सक्रिय अभीप्सा, तब तुम्हारी अभीप्सा अपना कार्य करेगी । यह उस उत्तर की पुकार करेगी जिसके लिए तुम अभीप्सा कर रहे हो । परन्तु, यदि, बाद में, तुम कुछ और सोचना आरम्भ कर दो अथवा सावधान या ग्रहणशील न बने रहो तब तुम देख भी न पाओगे कि तुम्हारी अभीप्सा को उत्तर मिल गया है : "मैं अभीप्सा तो करता हूँ परन्तु कुछ ग्रहण नहीं कर पाता, मुझे उत्तर नहीं मिलता !" हाँ, तुम्हें उत्तर तो मिलता है किन्तु इसके प्रति सचेतन नहीं रहते, क्योंकि तुम इस प्रकार चंचल बने रहते हो, हर समय चक्की के समान घूमते रहते हो ।

*CWM Vol.6, p.115* —श्रीमाँ

*क्या व्यक्ति को एक महान अभीप्सा के साथ ही जन्म नहीं लेना चाहिये ?*

नहीं, अभीप्सा एक ऐसी चीज है जिसे सत्ता की अन्य गतिविधियों के समान विकसित, शिक्षित किया जाता है । व्यक्ति थोड़ी-सी अभीप्सा के साथ जन्म ले सकता है और महान अभीप्सा तक विकसित कर सकता है । व्यक्ति एक छोटे-से संकल्प के साथ जन्म ले सकता है और इसे विकसित कर सबल बना सकता है । यह विश्वास करना बेतुका विचार है कि चीजें तुम्हारे पास बनी बनाई आ जायें एक प्रकार की कृपा द्वारा और यह कि यदि तुम्हें अभीप्सा नहीं दी गई है तब यह कभी नहीं आयेगी — यह सच नहीं है । खास कर इसी विचार पर श्रीअरविन्द ने अपने पत्र में और इस अनुच्छेद में बल दिया है जिसे मैं पढ़ने जा रही हूँ । वे कहते हैं कि तुम्हें चुनाव करना होगा और यह विकल्प तुम्हारे सामने निरन्तर रखा जाता है और हमेशा तुम्हें चुनाव करना पड़ता है । यदि तुम चुनाव नहीं करते तब तुम प्रगति नहीं कर पाओगे । तुम्हें चुनाव करना है; "ऐसी कोई शक्ति" नहीं है जो तुम्हारे लिए चुनाव करती है या कोई संयोग या भाग्य या नियति — यह सच नहीं है । तुम्हारा संकल्प स्वतंत्र है । यह जानबूझ कर स्वतंत्र छोड़ दिया गया है और तुम्हें ही चुनाव करना है। तुम्हें ही निश्चय करना है कि प्रकाश की खोज करनी है या नहीं, सत्य का सेवक बनना है या नहीं — तुम्हें ही । अथवा अभीप्सा करें या न करें तुम्हें ही निश्चय करना है । और जब तुम्हें कहा जाता है, "अपना पूर्ण समर्पण करो तब तुम्हारे लिए कार्य कर दिया जायेगा", यह बिलकुल ठीक है, किन्तु अपना समर्पण पूर्ण करने के लिए, प्रत्येक दिन और प्रत्येक क्षण तुम्हें चुनाव करना है । अन्यथा तुम नहीं करोगे, यह अपने आप नहीं हो जायेगा। तुम्हें ही इसे करने की इच्छा करनी होगी । जब यह कर लिया जाता है, सब कुछ ठीक-ठाक हो जाता है । जब तुम्हारे पास ज्ञान भी है, सब कुछ ठीक-ठाक हो जाता है और जब तुम भगवान के साथ तदात्म हो जाते हो तब चीजें और भी बेहतर होती हैं । परन्तु तब तक तुम्हें ही संकल्प, चुनाव और निश्चय करना होगा । आलस्य के वश में होकर यह कहते हुए सो

मत जाओ "ओह ! मेरे लिए कार्य स्वयं हो जायेगा, मुझे कुछ नहीं करना है, केवल धारा के साथ बहते जाना है।" यह सच नहीं है, कार्य अपने आप नहीं हो जाता, क्योंकि यदि छोटी-सी चीज भी तुम्हारे छोटे-से संकल्प को निष्फल कर देती है तब यह कहता है, "नहीं, वह नहीं !.., तब !"

*CWM Vol.4, p.342* —श्रीमाँ

### *तपस्या का सच्चा अर्थ क्या है ?*

तपस्या एक अनुशासन है जिसे व्यक्ति भगवान की खोज के उद्देश्य से अपने ऊपर आरोपित करता है ।

### *क्या तपस्या और अभीप्सा एक ही चीज है ?*

नहीं, अभीप्सा के बिना तुम तपस्या नहीं कर सकते । अभीप्सा पहले है, कुछ उपलब्ध करने का संकल्प । तपस्या प्रक्रिया है — सचमुच एक प्रक्रिया, एक विधि ।

*CWM Vol.4, p.343* —श्रीमाँ

### *प्राण को व्यक्ति कैसे रूपान्तरित कर सकता है ?*

पहला कदम : संकल्प । दूसरा निष्कपटता तथा अभीप्सा । किन्तु संकल्प तथा अभीप्सा लगभग एक ही चीज है, एक दूसरे का अनुगमन करता है । तब अध्यवसाय । हाँ, अध्यवसाय किसी भी प्रक्रिया में आवश्यक है और यह प्रक्रिया क्या है ?... प्रथम, निरीक्षण तथा विवेचन की योग्यता बहुत आवश्यक है, अपने अन्दर प्राण का पता लगाने की क्षमता, अन्यथा तुम्हें यह कहना कठिन लगेगा : "यह प्राण से आता है, यह मन से आता है, यह शरीर से आता है ।" हर चीज तुम्हें मिली-जुली और अस्पष्ट लगेगी ।

अत्यन्त दीर्घकालिक निरीक्षण के बाद तुम भिन्न-भिन्न भागों के बीच अन्तर कर सकोगे तथा गति के मूल को पहचान पाओगे । इसके लिए बहुत

लम्बे समय की आवश्यकता पड़ती है, किन्तु व्यक्ति तेजी से भी जा सकता है, यह लोगों पर निर्भर है । परन्तु एक बार जब भिन्न-भिन्न भागों का पता लगा लिया तब अपने से पूछो, "इसमें प्राण का कौन-सा अंश है ? प्राण तुम्हारी चेतना में क्या लाता है ? किस प्रकार तुम्हारी गतिविधियों को परिवर्तित करता है ? उनमें यह क्या जोड़ देता है और क्या ले लेता है ? प्राण के हस्तक्षेप से तुम्हारी चेतना में क्या होता है ?" एक बार जब तुम यह जान जाते हो तब तुम क्या करते हो ?... तब तुम्हें इस हस्तक्षेप की निगरानी करने की आवश्यकता होगी, निरीक्षण करो, यह पता करो कि किस प्रकार यह कार्य करता है । उदाहरण के लिए, तुम अपने प्राण को रूपान्तरित करना चाहते हो । तुम्हारी अभीप्सा में एक बहुत बड़ी निष्कपटता है और आखिर तक जाने का दृढ़ निश्चय है । तुममें यह सब है । तुम निरीक्षण करना आरम्भ करते हो और देखते हो कि दो चीजें घट सकती हैं (बहुत चीजें हो सकती हैं) किन्तु मुख्य रूप से केवल दो । पहला, एक प्रकार का उत्साह तुम पर हावी हो जाता है । तुम गंभीरतापूर्वक कार्य करना आरम्भ करते हो । इस उत्साह में तुम सोचते हो, "मैं यह या वह कार्य करने जा रहा हूँ, मैं तुरन्त ही अपना लक्ष्य प्राप्त कर लूंगा, हर चीज शानदार होने जा रही है । मैं देखूंगा कि यदि यह प्राण आज्ञा-पालन नहीं करता तब कैसे इसके साथ मैं पेश आता हूँ ।" और यदि तुम सावधानीपूर्वक देखो तब तुम पाओगे कि प्राण अपने आप से कह रहा है, "आह, आखिरकार, यहाँ एक सुअवसर है ।" यह स्वीकार कर लेता है, यह अपने सारे उत्साह के साथ कार्य करने लगता है और... अपनी समस्त अधीरता के साथ ।

दूसरी चीज इसके बिलकुल विपरीत हो सकती है, "मैं स्वस्थ नहीं हूँ, जीवन कितना कठिन है, मैं यह सब कैसे कर पाऊँगा, मैं क्या कभी लक्ष्य पर पहुँच पाऊँगा?" प्राण ही अपने लिए किये जानेवाले कार्य से प्रसन्न नहीं है। वह नहीं चाहता कि कोई उसके मामले में दखल दे । इसलिए यह हतोत्साह, निराशा, सन्देह लाता है। ये दो चरम सीमाएं हैं और प्रत्येक की अपनी कठिनाइयाँ हैं । *CWM Vol.4, p.247* —श्रीमाँ

## अभीप्सा और मांग में क्या अन्तर है ?

जब तुम दोनों का अनुभव कर चुके हो तब तुम आसानी से अन्तर कर सकते हो ।

अभीप्सा में एक नि:स्वार्थ अग्निशिखा होती है जो कामना में नहीं होती । तुम्हारी अभीप्सा अपने आप की ओर वापस नहीं लौटती जबकि कामना हमेशा व्यक्ति के अपने स्वयं की ओर वापस होती है । विशुद्ध मनोवैज्ञानिक दृष्टि से अभीप्सा एक आत्मदान है, हमेशा ही, जबकि कामना हमेशा कुछ ऐसी चीज होती है जिसे व्यक्ति अपनी ओर खींचता है । अभीप्सा ऐसी चीज है जो अपने आप को देती है, जो आवश्यक नहीं कि विचार के रूप में हो बल्कि क्रियात्मक गति के रूप में, स्पन्दन के रूप में, प्राणिक आवेग के रूप में हो सकती है । सच्ची अभीप्सा जब विचार से रूपायित होती है तब भी मस्तिष्क से नहीं आती, यह एक अग्निशिखा के समान हृदय से निकलती है।

अभीप्सात्मक प्रेम तथा कामनात्मक प्रेम में तात्विक अन्तर यह है कि अभीप्सात्मक प्रेम पूर्ण आत्मदान है और बदले में कुछ मांग नहीं करता — यह किसी चीज का दावा नहीं करता जबकि कामनात्मक प्रेम यथासम्भव कम से कम आत्मदान करता है और यथासम्भव अधिकतम की मांग करता है । यह चीजों को अपनी ओर खींचता है तथा हमेशा मांग करता है ।

## अभीप्सा हमेशा प्रसन्नता देती है...

बल्कि पूर्णता की अनुभूति — प्रसन्नता या आह्लाद भ्रामक शब्द है; परिपूर्णता की, शक्ति की, आन्तरिक अग्निशिखा की अनुभूति जो तुम्हें भर देती है । अभीप्सा एक विशेष प्रकार का आह्लाद दे सकती है जिसमें कोई उत्तेजना नहीं होती ।

*CWM Vol.4, p.135* —श्रीमाँ

## योग की पहली आवश्यकता

"क्या तुम भगवान के लिए योग करना चाहते हो ?... यदि ऐसा है तभी कहा जा सकता है कि इस पथ के लिए तुम्हारे अन्दर पुकार है ।"

"यह पहली आवश्यकता है — भगवान के लिए अभीप्सा ।"

*CWM Vol.3, p.1* —श्रीमाँ

## अभीप्सा की गति

अभीप्सा की पहली गति यह है : तुम्हारे अन्दर एक अस्पष्ट संवेदन होता है कि विश्व के पीछे कुछ ऐसी चीज है जो जानने योग्य है (क्योंकि तुम अभी तक इसे जानते नहीं हो), जो सम्भवतः एक मात्र चीज है जिसके लिए जीवित रहना चाहिये, जो तुम्हें सत्य के साथ संयुक्त कर सकता है; एक ऐसी चीज है जिस पर विश्व निर्भर करता है किन्तु जो विश्व पर निर्भर नहीं करता, कुछ ऐसी चीज है जो अभी तक तुम्हारी बुद्धि से परे है, किन्तु जो तुम्हारी समझ के अनुसार सभी चीजों के पीछे विद्यमान है... मैंने यहाँ अधिकांश लोग इसके बारे में जो अनुभव करते हैं उससे कहीं अधिक कहा है, किन्तु पहली अभीप्सा का आरम्भ यही है । उसे जानना, इस निरन्तर मिथ्यात्व में निवास नहीं करना जहाँ चीजें इतनी विकृत और कृत्रिम हैं, कुछ आनन्ददायक होगा, कुछ ऐसी चीज पाना जिसके लिए जीवन जीने योग्य है ।

दूसरी चीज तुम्हें जो करनी है वह है इस अभीप्सा को बनाये रखना, इसकी देखभाल करना, इसे हमेशा सतर्क, जाग्रत तथा जीवन्त बनाये रखना ।

CWM Vol.4, p.67 —श्रीमाँ

## भागवत संकल्प क्या है, यह कैसे जानें ?

आवश्यक है एक अभीप्सा जो सत्ता में एक अविच्छिन्न अग्नि के समान प्रज्वलित है, और जब भी तुममें कोई कामना, प्राथमिकता, आकर्षण पनपे

तब उन्हें इसी अग्नि में आहूत कर देना होगा । यदि तुम इसे आग्रहपूर्वक करो तब तुम देखोगे कि सत्य-चेतना की थोड़ी-सी चमक तुम्हारी सामान्य चेतना में उतरने लगेगी । सर्वप्रथम यह मन्द होगी, सभी कामनाओं, प्राथमिकताओं, आकर्षणों, पसन्दों के शोरगुल के बहुत पीछे । किन्तु तुम्हें इस सबके पीछे जाकर उस सत्य-चेतना को पाना होगा जो स्थिर, प्रशान्त, प्रायः निश्चल-नीरव है ।

*CWM Vol.4, p.2* —श्रीमाँ

## योग में कठिनाइयाँ

तुम्हारी कठिनाई का स्वरूप क्या है — वही तथ्य योग में तुम्हारी विजय का स्वरूप निर्धारित करेगा । इस प्रकार यदि प्रकृति में निरन्तर आग्रहपूर्ण स्वार्थ है तब यह इस बात का संकेत है कि भविष्य में तुम्हारी सर्वप्रमुख उपलब्धि विश्वव्यापकता की सिद्धि होगी । और जब तुममें स्वार्थ रहता है तब तुम्हारे अन्दर इस कठिनाई को इसके विरोधी में, विशालता की जीत में पलट देने की शक्ति भी होती है ।

जब तुम्हें कोई सिद्धि प्राप्त करनी है तब तुम्हारे अन्दर ठीक कुछ ऐसी विशिष्ट लक्षणात्मक चीज होगी जो उसका विरोध करेगी । दोष या कठिनाई का आमना-सामना होने पर तुम कहते हो, "ओह ! मैं ऐसा ही हूँ । यह कितना भद्दा है !" किन्तु तुम्हें स्थिति के सत्य को देखना चाहिये । अपने आप से कहो, "मेरी कठिनाई स्पष्ट रूप से मुझे बता रही है कि मुझे अन्ततोगत्वा क्या करना है । इसके चरम निषेध — दूसरे ध्रुव की गुणवत्ता पर जाना ही मेरा मिशन है ।"

सामान्य जीवन में भी हम सबको कभी-कभी प्रतिकूल परिस्थितियों का अनुभव होता है । जो व्यक्ति डरपोक होता है और जिसमें परिस्थितियों का सामना करने का साहस नहीं होता, वही सबसे अधिक सामना करने में समर्थ पाया जाता है ।

जिस व्यक्ति में भगवान के लिए अभीप्सा होती है उस व्यक्ति के लिए उसकी मुख्य कठिनाई ही जो उसे हमेशा परेशान करती है — वह प्रवेश-द्वार बन जाती है जिसके द्वारा वह अपने व्यष्टिगत ढंग से भगवान को पा लेता है। भगवान की सिद्धि की ओर यह उसका विशेष पथ होता है ।

यह भी तथ्य है कि यदि किसी की सैकड़ों कठिनाइयाँ हैं तब इसका अर्थ है कि उसकी सिद्धि असाधारण होगी — यदि निस्सन्देह उसमें धैर्य और सहिष्णुता हो और वह उन दोषों के विरुद्ध अभीप्सा की अग्नि-ज्वाला को प्रज्वलित बनाये रखे ।

और स्मरण रखो कि भागवत कृपा सामान्य रूप से तुम्हारी कठिनाइयों के अनुपात में होती है ।

*CWM Vol.3, p.143* — श्रीमाँ

## हम भगवान के साथ सम्पर्क क्यों खो देते हैं ?

क्योंकि तुम्हारी चेतना अभी तक विभाजित है । भगवान तुम्हारे मन में स्थायी रूप से निवास नहीं करते । तुम पूर्ण रूप से भागवत जीवन के लिए निवेदित नहीं हो । अन्यथा तुम किसी चीज पर कितना भी एकाग्रचित क्यों न रहो फिर भी तुम्हें अनुभव होता रहेगा कि भगवान हर समय तुम्हारी सहायता और समर्थन कर रहे हैं ।

सभी प्रयासों अथवा व्यवसायों में चाहे वह बौद्धिक हो या क्रियात्मक, तुम्हारा एक ही आदर्श वाक्य होना चाहिये, "स्मरण करो और समर्पण करो" । जो भी कार्य करो उसे समर्पण के रूप में करो । और यह भी तुम्हारे लिए एक उत्कृष्ट अनुशासन हो जायेगा, यह तुम्हें बहुत-सी मूर्खतापूर्ण और बेकार की चीजें करने से रोकेगा ।

*CWM Vol.3, p.26* — श्रीमाँ

## व्यक्ति कैसे हमेशा भागवत स्मृति बनाये रख सकता है ?

एक ऐसी स्थिति उपलब्ध करने का हमारा लक्ष्य होना चाहिये जो योग की वास्तविक उपलब्धि है, ऐसी अन्तिम पूर्णता और सिद्धि है जिसके लिए अन्य सब केवल मात्र तैयारी हैं — वह है एक ऐसी चेतना जिसमें भगवान के बिना कुछ भी करना असम्भव हो जाये; क्योंकि तब भगवान के बिना तुम्हारी क्रियाशीलता का उद्‌गम ही गायब हो जाता है । ज्ञान, सामर्थ्य सब चले जाते हैं । किन्तु जब तक तुम यह अनुभव करते हो कि जिन शक्तियों से तुम काम लेते हो वे तुम्हारी हैं तब तुम भागवत समर्थन की उपस्थिति नहीं अनुभव करोगे ।

योग के आरम्भ में, प्रायः तुममें भगवान को भूल जाने की प्रवृति होती है । किन्तु सतत अभीप्सा के द्वारा तुम स्मृति को वर्धित करते और विस्मृति को कम करते हो । किन्तु, इसे एक कठिन अनुशासन अथवा एक कर्त्तव्य के रूप में नहीं करना चाहिये । इसे प्रेम और आनन्द के भाव से करना चाहिये । तब शीघ्र ही एक ऐसी अवस्था आ जायेगी जब यदि प्रत्येक क्षण और प्रत्येक कार्य में भगवान की उपस्थिति की अनुभूति न हो तब तुम तुरन्त अकेला, उदास और दुःखी महसूस करने लगोगे ।

*CWM Vol.3, p.27* — श्रीमाँ

## 'सावित्री' में अभीप्सा

अज्ञात से अज्ञात की ओर बढ़ते हैं हम ।

हमारे क्षणभंगुर जीवन को यहाँ हमेशा रखती हैं घेरे
धूसर परछाइयाँ अनुत्तरित प्रश्नों की ;
काली निश्चेतना के निःसंकेत रहस्य
हैं डटे अनसुलझे, पीछे भाग्य की आरम्भ रेखा के ;
एक अभीप्सा रात्रि की गहराई में,

एक नश्वर शरीर और अर्ध प्रकाशित मन का बीज,
सचेतन अग्नि की अपनी एक मात्र जिह्वा को उठाता है ऊपर
अमर ज्योति की ओर खो गई है जो सदा के लिए।

सावित्री पृ.50

उन सबमें, जो एक उच्चतर जीवन तक उठ चुके हैं ऊपर
अजात वस्तुओं की वाणी एक फुसफुसाती है कान में,
कुछ ऊँचे सूर्यप्रकाश को जिन नेत्रों ने देखा है, उन्हें
दिखाती है अभीप्सा बिम्ब एक शिखर का :
एक बीज को करने कार्यान्वित जो उसने (शक्ति ने) है कर दिया प्रक्षेपित अन्दर,
उनकी शक्ति को करने उपलब्ध अन्दर अपने, उनके प्राणी हैं रहते जीवित ।

सावित्री पृ.183

एक निगरानी-मीनार में विजय का एक बालचर,
उसकी अभीप्सा ने बुलाया ऊँची नियति को नीचे ;
एक शान्त योद्धा ने बल के अपने नगर में बढ़ाया कदम
अक्षत, सत्य के हीरक-सिंहासन के रक्षार्थ ।

सावित्री पृ.358

## श्रीमाँ की प्रार्थना

मेरी अभीप्सा तेरी ओर ऊपर उठती है सदा एक समान बालवत् रूप में, अपनी सरलता में अत्यतन्त सामान्य, किन्तु मेरी पुकार निरंतर अधिक उत्कट होती है और लड़खड़ाते शब्दों के पीछे मेरे संकेन्द्रित संकल्प की समस्त भावप्रवणता रहती है । और हे प्रभु, मैं तुझसे विनय करती हूँ, इस कथन के भोलेपन के बावजूद जो शायद ही बौद्धिक है, अधिक सच्चे प्रकाश, सच्ची पवित्रता, निष्कपटता और प्रेम के लिए प्रार्थना करती हूँ, और यह सब समस्त के लिए, जनसाधारण के लिए जिनसे मेरी सत्ता का गठन हुआ है और उस

समस्त के लिए जिनसे वैश्व सत्ता संघटित होती है ; मैं तुझसे प्रार्थना करती हूँ, यद्यपि मैं जानती हूँ कि तुझसे अनुनय-विनय करना पूर्ण रूप से व्यर्थ है, क्योंकि हमलोग स्वयं अपने अज्ञान और दुर्भावना के कारण तेरी महिमामयी तथा पूर्ण अभिव्यक्ति के मार्ग में रोड़े अटका सकते हैं, फिर भी, मेरी सत्ता के अन्दर कुछ बालसुलभ चीज इस मानसिक मनोवृति में एक अवलम्ब प्राप्त करती है । मैं प्रार्थना करती हूँ कि तेरे राज्य की शान्ति समस्त पृथ्वी पर फैल जाये ।

*CWM Vol.1, p.52* — श्रीमाँ

## विरोधी शक्तियों का सामना कैसे करें ?

विरोधी शक्तियों के आक्रमण अवश्यम्भावी होते हैं : तुम्हें इन्हें अपने मार्ग में परीक्षाओं के रूप में स्वीकार करना है और अपनी अग्नि-परीक्षा में साहस के साथ आगे बढ़ते जाना है । संघर्ष कठिन हो सकता है, किन्तु, जब तुम इससे बाहर आ जाते हो तब तुम कुछ उपलब्ध कर चुके होते हो, तुम एक कदम आगे बढ़ गये होते हो । विरोधी शक्तियों के अस्तित्व की आवश्यकता भी है । वे तुम्हारे संकल्प को दृढ़तर और तुम्हारी अभीप्सा को स्पष्टतर बनाती हैं ।...

... विरोधी शक्तियों के साथ संघर्ष में असफल होने का एक ही कारण हो सकता है और वह है भागवत सहायता में सच्ची श्रद्धा का अभाव। अभीप्सा में सच्चाई से हमेशा आवश्यक सहायता अवश्य मिलती है । एक शान्त पुकार, एक ऐसा दृढ़ विश्वास कि तुम सिद्धि के इस आरोहण में अकेले नहीं जा रहे हो और एक श्रद्धा ऐसी कि आवश्यक सहायता अवश्य आयेगी — ये सब तुम्हें आसानी से और सुरक्षापूर्वक यात्रा के अन्त तक मार्गनिर्देश करेंगे ।

*CWM Vol.3, p.33* — श्रीमाँ

## पौधों में अभीप्सा

क्या तुमने कभी ध्यान से यह नहीं देखा है कि जंगल में इसके अनगिनत वृक्ष और पौधे प्रकाश को पकड़ने के लिए सैकड़ों सम्भव तरीकों से टेढ़े-मेढ़े होते हुए कैसे धूप की ओर बढ़ते हैं । भौतिक में अभीप्सा की यही ठीक-ठीक अनुभूति होती है, प्रकाश की ओर प्रेरणा, गति, उत्साह । पौधों में, उनकी भौतिक सत्ता में मनुष्यों की अपेक्षा यह अधिक होता है । उनका समस्त जीवन प्रकाश की पूजा है । प्रकाश निस्सन्देह भगवान का भौतिक प्रतीक है, और सूर्य, भौतिक परिस्थितियों के अधीन, परम चेतना का प्रतिनिधित्व करता है । पौधों ने इसे अपने सीधे-सादे अन्ध तरीके से बड़े स्पष्ट रूप में अनुभव किया है । उनकी अभीप्सा तीव्र होती है, यदि तुम यह जानो कि इसके प्रति सचेतन कैसे हो सकते हैं । भौतिक जगत में वे मेरे प्रभाव के प्रति सर्वाधिक उद्घाटित हैं । मैं मनुष्य की अपेक्षा एक फूल में अधिक आसानी से चेतना संचारित कर सकती हूँ । यह बहुत ग्रहणशील होता है, यद्यपि यह नहीं जानता कि इसे अपनी अनुभूति को रूप कैसे दिया जाये, क्योंकि इसमें मन का अभाव है । किन्तु शुद्ध चैत्य चेतना का इसमें सहज बोध होता है । इसलिए, जब तुम मुझे फूल अर्पित करते हो तब उनकी अवस्था हमेशा ही तुम्हारी अवस्था की सूचक होती है । कुछ ऐसे लोग होते हैं जो मेरे पास ताजा फूल लाने में कभी सफल नहीं हो पाते — फूल के ताजा होने के बावजूद यह उनके हाथों में निस्तेज हो जाता है । फिर भी, अन्य ऐसे भी होते हैं जो हमेशा ताजा फूल लाते हैं, बल्कि वे मुरझाये फूलों को पुनरुज्जीवित कर देते हैं । यदि तुम्हारी अभीप्सा प्रबल है तब तुम्हारा पुष्पार्पण ताजा होगा । और यदि तुम ग्रहणशील हो, तब तुम बड़ी आसानी से उस सन्देश को आत्मसात् करने में सक्षम भी हो पाओगे जो मैं उस फूल में डाल कर तुम्हें देती हूँ । जब मैं तुम्हें फूल देती हूँ तब मैं तुम्हें चेतना की स्थितियाँ देती हूँ, फूल माध्यम होते हैं और यह सब तुम्हारी ग्रहणशीलता पर निर्भर करता है कि वे प्रभावशाली होते हैं या नहीं ।

*CWM Vol.3, p.132* — श्रीमाँ

## भगवान के प्रेम के लिए भौतिक में अभीप्सा

यहाँ एक फूल है जिसे हमलोगों ने "भगवान के प्रेम के लिए भौतिक में अभीप्सा" नाम दिया है । "भौतिक" से मेरा तात्पर्य भौतिक चेतना से है, उस चेतना से जो सर्वाधिक सामान्य बहिर्गामी चेतना होती है, अधिकांश मानव प्राणियों की साधारण चेतना, जो उच्चतर वस्तुओं की अभीप्सा के बदले आराम, अच्छा भोजन, अच्छे वस्त्र, अच्छे सम्बन्धों को अधिक महत्व देते हैं । भगवान के प्रेम के लिए भौतिक में अभीप्सा के अन्तर्गत यह तथ्य निहित है कि भौतिक और कुछ नहीं मांगता सिवा इसके कि वह यह महसूस करे कि भगवान उसे कैसे प्यार करते हैं । यह महसूस करने लगता है कि इसकी सामान्य संतुष्टियाँ नितान्त अपर्याप्त हैं । परन्तु इसमें कोई सुलह नहीं हो सकती ; यदि भौतिक भगवान का प्रेम चाहता है तब इसे केवल उसी की चाह होनी चाहिये और यह नहीं कहना चाहिये, "मैं भगवान का प्रेम प्राप्त करूंगा और साथ ही साथ अन्य आसक्तियाँ, जरूरतें तथा भोगों को भी बनाये रखूंगा ।"

अभीप्सा का मूलभूत अधिष्ठान, जहाँ से यह प्रकाश विखेरती है या सत्ता के एक या दूसरे भाग में प्रकट करती है, चैत्य केन्द्र है । जब मैं भौतिक में अभीप्सा के बारे में कहती हूँ तब मेरा तात्पर्य यह होता है कि तुम्हारे अन्दर की वह चेतना जो भौतिक आराम तथा सुख के लिए ललकती है, वह तुम्हारी प्रकृति के उच्चतर भागों के द्वारा बाध्य हुए बिना एकनिष्ठ रूप से भगवान के प्रेम की मांग करे । सामान्य रूप से तुम्हें इसे प्रकाश दिखाना होता है, निश्चय ही यह निरन्तर आग्रहपूर्वक किया जाना चाहिये, अन्यथा भौतिक कभी नहीं सीखेगा और अपने आप सीखने में युगों-युगों तक इसे प्रकृति के कितने ही सामान्य चक्कर काटने होंगे । वास्तव में प्रकृति के चक्करों के द्वारा सभी प्रकार की सम्भव सन्तुष्टियों को दिखाने या अनुभव कराने का आशय होता है, उन्हें निःशेष कर यह विश्वास दिलाना कि उनमें से कोई भी वास्तव में उसे तृप्त नहीं कर सकती और मूलतः वह भागवत सन्तुष्टि की

ही खोज होती है । योग में हमलोग प्रकृति की धीमी प्रक्रिया को तेज कर देते हैं और भौतिक चेतना पर सत्य को देखने, इसे पहचानना सीखने और इसे चाहने के लिए दबाव डालते हैं । किन्तु इसे सत्य कैसे दिखाया जाये ? ठीक वैसे ही जैसे तुम एक अन्धेरे कमरे में प्रकाश ले आते हो । अपनी भौतिक चेतना के अन्धकार को अपने अधिक परिष्कृत भागों के अन्तर्भास तथा अभीप्सा के द्वारा ज्योतिर्मय करो और तब तक इसे करते रहो जब तक यह महसूस न करने लगे कि निम्न सामान्य वस्तुओं की भूख कैसी निरर्थक और असन्तोषजनक है, और सत्य की ओर सहज रूप से अभिमुख न हो जाये । जब यह उस ओर मुड़ जाये, तुम्हारा समस्त जीवन परिवर्तित हो जायेगा — यह अनुभूति असन्दिग्ध और निर्भ्रान्त है ।

*CWM Vol.3, p.130* — श्रीमाँ

## प्रार्थना और अभीप्सा

है प्रभु, तू सर्वशक्तिमान है : योद्धा बन, विजय प्राप्त कर । तेरा प्रेम हमारे हृदयों का सर्वोच्च स्वामी बने और तेरा ज्ञान हमारे विचारों का साथ कभी न छोड़े... हमें कायरता तथा अन्धकार में कभी छोड़ न दे । हर सीमा को ध्वस्त कर दे, हर बेड़ी को छिन्न-भिन्न कर दे, हर भ्रांति को तितर-बितर कर दे ।

हमारी अभीप्सा तेरी ओर उत्कट प्रार्थना बन कर ऊपर उठती है ।

*CWM Vol.1, p.209* — श्रीमाँ

*अभीप्सा शक्तियों को पुकारने की क्रिया है। जब शक्तियों ने उत्तर दे दिया तब शान्त ग्रहणशीलता की स्वाभाविक स्थिति आ जाती है जो संकेन्द्रित परन्तु अनायास होती है।*

*पूर्ण योग, पृ. 102* *श्रीअरविन्द*

## ध्यान में विचार-शून्यता और अभीप्सा

यदि तुम ध्यान में अपने आप को बिलकुल खाली भी कर दो तब भी वह तुम्हारी अभीप्सा की प्रकृति को परिवर्तित नहीं करता या इसके क्षेत्र को नहीं बदलता। कुछ लोगों में अभीप्सा मानसिक स्तर या प्राणिक क्षेत्र में गति करती है। अभीप्सा की गुणवत्ता पर निर्भर करती है वह शक्ति जो प्रत्युत्तर देती है और वह कार्य जिसे करने के लिए यह आती है। ध्यान में अपने आप को रिक्त करने से आन्तरिक शान्ति आती है । इसका अर्थ यह नहीं कि तुम शून्य या मृतप्राय या जड़ हो गये हो। अपने आप को रिक्त पात्र बनाकर तुम उस चीज को आमंत्रित करते हो जो उस रिक्तता को भरेगी। इसका अर्थ यह है कि तुम अपनी आन्तरिक चेतना के दबाव को निर्मुक्त करते हो और सिद्धि की ओर बढ़ते हो। चेतना की प्रकृति और इसके दबाव की मात्रा से यह निर्धारित किया जाता है कि कौन-सी शक्ति तुम क्रीड़ा में लाते हो और क्या वे शक्तियाँ तुम्हारी मदद करेंगी या हानि पहुँचायेंगी ।

अनेक भिन्न-भिन्न अवस्थाओं में तुम ध्यान कर सकते हो और उन सबका उन शक्तियों पर तथा उनकी कार्यप्रणाली पर प्रभाव पड़ता है जो अन्दर या नीचे उतारी जाती हैं । यदि तुम ध्यान के लिए अकेले बैठते हो तब तुम्हारी अपनी ही आन्तरिक तथा बाहरी अवस्था महत्वपूर्ण होती है। यदि तुम ध्यान के लिए अन्य लोगों के साथ बैठते हो तब सामान्य अवस्था प्राथमिक महत्व की होती है। किन्तु दोनों ही मामलों में अवस्थाएं हमेशा भिन्न-भिन्न होंगी और प्रत्युत्तर देनेवाली शक्तियाँ हमेशा एक-सी नहीं रहेंगी। एक प्राचीन कहावत है कि यदि बारह सच्चे व्यक्ति अपने संकल्प और अपनी अभीप्सा को संयुक्त कर भगवान को पुकारें तब भगवान प्रकट होने के लिए बाध्य हो जायेंगे । परन्तु संकल्प को एकाग्र होना होगा और अभीप्सा को निष्कपट ।

*CWM Vol.3, p.97* — श्रीमाँ

## मात्र अभीप्सा

तुम्हें मात्र अभीप्सा करनी है
अपने को श्रीमाँ के प्रति उद्‌घाटित करने के लिए,
उनके संकल्प के प्रतिकूल सर्वस्व की अस्वीकृति के लिए
और अपने अन्दर उन्हें कार्य करने देने के लिए —
उनके लिए अपना सब कार्य करते हुए भी
और इस विश्वास के साथ कि
उन्हीं की शक्ति के द्वारा तुम इसे कर सकते हो ।

— श्रीअरविन्द

### अभीप्सा

*व्यक्तिगत अभीप्सा तब तक जरूरी होती है जब तक ऐसी अवस्था न आ जाये जिसमें सब कुछ स्वतः होने लगे और विकास के लिए केवल कुछ ज्ञान और सहमति आवश्यक रह जाये।*

* *

*अभीप्सा भगवान के लिए पुकार है। संकल्प सचेतन शक्ति का प्रकृति पर दबाव है।*

*पूर्ण योग, पृ. 102* — *श्रीअरविन्द*

# 6
# ग्रहणशीलता

**ग्रहणशीलता**
*'भागवत संकल्प' के प्रति*
*सचेतन तथा उसे समर्पित*

*(श्रीमाँ द्वारा दिया गया पुष्प का आध्यात्मिक अर्थ तथा व्याख्या)*

Gladiolus Xhortulanus

ग्रहणशीलता भागवत कार्य को स्वीकार करने और अपने अंदर धारण करने की क्षमता है।

*

ग्रहणशीलता : भागवत संकल्प के प्रति सचेतन और उसे समर्पित होती है।

*

सर्वांगीण ग्रहणशीलता : सारी सत्ता 'भागवत संकल्प' के प्रति सचेतन होती है और उसकी आज्ञा का पालन करती है।

*

चैत्य ग्रहणशीलता : ऊपर उठती हुई शक्ति को चैत्य आनंद के साथ उत्तर देती है।

*

मानसिक ग्रहणशीलता : सीखने के लिए हमेशा तैयार।

*

संवेगात्मक ग्रहणशीलता : संवेदनाओं की दिव्य बनने की चाह।

*

प्राणिक ग्रहणशीलता केवल तभी आती है जब प्राण समझ जाता है कि उसे रूपांतरित होना चाहिये।

प्राण भगवान् के लिए अभीप्सा में खिलता है।

*

भौतिक ग्रहणशीलता : जो भगवान् के सिवा और किसी के प्रति नहीं होनी चाहिये।

*

अतिमानसभावापन्न ग्रहणशीलता : आगामी कल की ग्रहणशीलता।

*

चेतना के विस्तार और अभीप्सा की अनन्यता से ग्रहणशीलता बढ़ती है।

*(22 दिसंबर, 1934)*

विद्रोह ग्रहणशीलता के द्वार बंद कर देता है।

*

नये सिरे से भरे जाने के लिए पात्र को कभी तो खाली होना चाहिये।

*

जब हम अधिक महान ग्रहणशीलता की तैयारी में होते हैं तब अपने-आप को खाली अनुभव करते हैं।

*

चेतना?

ग्रहणशील बनो - वह मौजूद है।

प्रेम और आशीर्वाद।

*

तुम जितना पाते हो उससे संतुष्ट रहने की कोशिश करो, क्योंकि यह ग्रहणशीलता का प्रश्न है। मेरी मानो - लोग जितना ग्रहण कर सकते हैं मैं उससे कहीं अधिक देती हूँ - और दो-तीन मिनटों में वे इतना पा सकते हैं कि

वह महीने भर तक चले। लेकिन मन अपनी अज्ञानपूर्ण मांगों के द्वारा दखल देता है और सारी चीज बिगड़ जाती है।

*(21 जनवरी, 1964)*

मेरा प्रेम हमेशा तुम्हारे साथ है : अगर तुम उसे अनुभव न करो तो इसका अर्थ है कि तुम उसे ग्रहण करने में समर्थ नहीं हो। यह तुम्हारी ग्रहणशीलता की कमी है और ग्रहणशीलता को बढ़ना चाहिये; इसके लिए तुम्हें अपने-आपको खोलना चाहिये और तुम अपने-आपको तभी खोलते हो जब अपने-आप को देते हो। निश्चय ही तुम 'भागवत प्रेम' और शक्तियों को न्यूनाधिक सचेतन रूप से अपनी ओर खींचने का प्रयास कर रहे हो। यह प्रक्रिया बुरी है। बिना लेखा-जोखा किये, बदले में किसी चीज की आशा किये बिना अपने-आप को दे दो, तब तुम पाने में समर्थ होंगे।

### *हम कैसे जान सकते हैं कि हम ग्रहणशील हैं ?*

जब तुम्हें देने की ललक का अनुभव हो और 'भागवत' कार्य के लिए देने का आनन्द आये तो तुम विश्वास कर सकते हो कि तुम ग्रहणशील हो गये हो।

*(12* जुलाई, *1964)*

### ग्रहणशील होना

ग्रहणशील होने का अर्थ देने की चाह, भगवान के कार्य के लिए, तुम्हारे पास जो कुछ है, तुम जो कुछ हो, तुम जो कुछ करते हो, वह सब दे देने का आनन्द।

*CWM Vol. 14, p. 146* -श्रीमाँ

## खुलापन

खुलापन शक्ति और प्रभाव को ग्रहण करने और प्रगति के लिए उपयोग करने का संकल्प है; परम चेतना के साथ संपर्क बनाये रखने की सतत अभीप्सा है; यह श्रद्धा है कि शक्ति औऱ चेतना हमेशा तुम्हारे साथ, तुम्हारे चारों ओर, तुम्हारे अंदर हैं और बस तुम्हें इतना ही करना है कि उन्हें ग्रहण करने के रास्ते में किसी भी चीज को बाधक न बनने दो।

*माताजी के वचन,भाग - 2 पृ. सं. 147* ---श्रीमाँ

## योग समन्वय से उद्धृत

योग मात्र स्वरूपतः एक नूतन जन्म है। इसका अर्थ मनुष्य के साधारण मनोमय एवं स्थूल जीवन से निकल कर एक उच्चतर आध्यात्मिक चेतना और महत्तर तथा दिव्यतर सत्ता में जन्म लेना है। अधिकतर मनुष्यों के साधारण, स्थूल एवं पाशविक जीवन से या कुछ लोगों की एक अधिक मानसिक, पर तो भी संकुचित जीवन-शैली से मुंह मोड़कर एक अधिक महान आध्यात्मिक जीवन और दिव्य जीवन-प्रणाली की ओर उन्मुख होना ही योग का सार है।

इसके लिए सबसे पहली आवश्यक बात यह है कि हम मन की उस केंद्रीय श्रद्धा औऱ दृष्टि को तिलांजलि दे दें जिसके अनुसार यह एक चिर अभ्यस्त बहिर्मुखी संसार-व्यवस्था औऱ घटना-क्रम में ही अपना विकास, सुख-संतोष औऱ रस लाभ करने में अपनी सारी शक्ति लगाये रखता है। प्राण को एक ऐसी विशाल, शांत, तीव्र और शक्तिशाली वस्तु में बदल जाना होगा जो अपनी पुरानी अन्ध, आतुर एवं संकीर्ण सत्ता को या क्षुद्र आवेग एवं कामना को पहचान तक न सके। इस कार्य की कठिनाई के कारण स्वभावतः ही सरल और मर्मस्पर्शी उपायों का अनुसरण किया गया है। इस कठिनाई के कारण ही धर्मों और योग-सम्प्रदायों में जगत के जीवन को आंतरिक जीवन से पृथक कर देने की प्रवृत्ति पैदा हुई है।

जीवन भगवान की अभिव्यक्ति का एक क्षेत्र है जो अभी पूर्ण नहीं हुई है।

यहीं, जीवन में, इसी भूतल पर, इसी शरीर में, - इहैव जैसा कि उपनिषदें बार-बार कहती हैं, - हमें देवाधिदेव को प्रकट करना है। इसकी परात्पर महिमा, ज्योति और मधुरिमा को हमें यहीं अपनी चेतना के लिए जीवित-जागृत बनाना है, यहीं उसे अधिगत और यथासम्भव व्यक्त करना है। अतः अपने योग में हमें जीवन को उसका पूर्ण रूपांतर करने के लिए अवश्य स्वीकार करना होगा। यह स्वीकृति हमारे संघर्ष में चाहे कितनी ही कठिनाइयां बढ़ा दे, उनसे हमें घबराना नहीं होगा। यद्यपि हमारा रास्ता अधिक उबड़-खाबड़ है, प्रयत्न अधिक जटिल, विकट और चकरा देने यहाँ तक कि हताश कर देनेवाला है, तथापि इसके पुरस्कार-स्वरूप एक विशेष अवस्था के बाद हमें एक महान लाभ प्राप्त हो जाता है। जब एक बार हमारा मन काफी हद तक स्थिर होता है और हमारी इच्छा-शक्ति पूर्ण रूप में उस एक ही उद्देश्य की ओर अभिमुख हो जाती है, तब जीवन स्वयं हमारा सहायक बन जाता है। एकनिष्ठ, जागरूक एवं पूर्णतः सचेतन रहकर हम जीवन के सभी रूपों की हर एक छोटी-मोटी बारीकी को और उसकी चेष्टाओं के सभी प्रसंगों को अपने अंदर की यज्ञीय अग्नि के लिए हवि के रूप में ग्रहण कर सकते हैं। संघर्ष में विजयी होकर, हम इस जड़ सत्ता तक को विवश कर सकते हैं कि यह पूर्णता की प्राप्ति में हमारी सहायक हो। जो शक्तियां हमारा विरोध करती हैं उन्हीं का राज्य छीन कर हम अपनी उपलब्धि को समृद्ध कर सकते हैं।

*योग समन्वय पृ. सं. 70* —श्रीअरविन्द

### *शरीर की ग्रहणशीलता सीमित क्यों है ?*

क्योंकि, चीजें घुलमिल न जायें इसके लिए जरूरी था कि भौतिक जगत कुछ स्थिर और दृढ़ हो। उदाहरण के लिए, अगर तुम्हारा शरीर इतना सूक्ष्म और लोचदार होता कि किसी अन्य व्यक्ति की उपस्थिति में अचानक यूं ही पिघलने लग जाता तो यह काफी परेशान करनेवाली बात होती। या पास आते ही तुम दोनों घुलमिल जाते तो बात कुछ अप्रिय-सी होती। इसलिए यहाँ ज्यादा घनता रखी गयी, एक व्यक्तित्व को दूसरे से अलग रखने के लिए (वास्तव में अलग

करने के उद्देश्य से ही), शक्ति में एक प्रकार की घनता रखी गयी। और यही स्थिरता शरीर को उतनी तेजी से प्रगति करने से रोकती है जितनी तेजी से वह प्रगति कर सकता है और उसे करनी चाहिये। और जैसे ही मनुष्य अपनी सामान्य उंचाई और शरीर-गठन तक पहुँचता है वह ज्यादा कठोर हो जाता है। बच्चों में वृद्धि का लोच होता है, वे सारे समय बदलते रहते हैं, बदलते दिखायी देते हैं, इसलिए जब तक वे बच्चे होते हैं, बढ़ते और विकसित होते रहते हैं, उनके अंदर कुछ नमनीयता रहती है। लेकिन चालीस के ऊपर होते ही साधारण जीवन में आदमी बैठ कर सोचने लगता है कि वह अपने लक्ष्य तक पहुंच गया है और अब अपने परिश्रम का फल इकट्ठा करने का समय है। इसके साथ ही वह सूख कर लकड़ी जैसा कठोर हो जाता है, बल्कि अंत में पथरा जाता है। और चूंकि शरीर अपने-आप को आंतरिक रूपांतर की क्रिया के अनुकूल नहीं बना सकता, इसलिए वह घसीटता है, बूढ़ा होने लगता है, कदम नहीं मिला सकता और सूख जाता है।

*CWM Vol.5 p. 259* — श्रीमाँ

***आपने कहा है कि भौतिक स्तरपर "ग्रहणशीलता एक बड़ी मात्रा में प्रतिरोध के साथ मिली रहती है।" यह प्रतिरोध क्या है ?***

तुम्हारे शरीर में प्रतिरोध नहीं है ? नहीं है क्या ? जब तुम कोई व्यायाम करना चाहो तो क्या तुम शरीर के साथ जो भी करना चाहो कर सकते हो ? और जब तुम अपना पाठ सीखना चाहो तो क्या तुम्हारा मस्तिष्क हमेशा उसे समझ सकता है ? यही तो प्रतिरोध है। जो कुछ प्रगति करने से इनकार करता है वह सब प्रतिरोध है। और मेरा खयाल है कि प्रतिरोध की मात्रा ग्रहणशीलता की मात्रा से बहुत अधिक है। ग्रहणशील होने के लिए बहुत ज्यादा परिश्रम करने की जरूरत होती है।

तुम नहीं जानते — यह ऐसी चीज है जिसे शायद तुम एक दिन जान पाओगे, शायद तुम्हें एक दिन बताया जाये, तुम्हें यह समझाया जा सके - तुम कल्पना नहीं कर सकते कि शक्ति का कितना बड़ा सैलाब तुम्हारे अधिकार

में है। और साधारणतः तुम उसे अनुभव भी नहीं करते। जब तुम्हें अनुभव होता है तो तुम्हारे अंदर कोई चीज सिकुड़ती है क्योंकि वह बहुत ज्यादा है, यही चीज तुम्हारे कोषाणुओं में एक प्रकार का सहज भय भर देती है। और जब तुम्हें वह प्राप्त होती है तो तुम तीन-चौथाई से अधिक छलका देते हो जैसे चीज ज्यादा भरे हुए बरतन में से निकल जाती है। वह छलक जाती है, गिर जाती है, क्योंकि तुम उसे रख सकने में असमर्थ हो। मुझे ऐसे बहुत से लोग मिले हैं जिन्होंने यह शिकायत की है कि उन्हें कुछ नहीं मिल रहा, अर्थात उनमें वह शक्ति नहीं है जिसकी उन्हें जरूरत थी। इसका कारण यह है कि वे उसे ग्रहण करने में बिलकुल असमर्थ थे। वे जितनी ले सकते थे उससे लाखों गुना अधिक शक्ति मौजूद थी। बात ऐसी है। तुम सब विशाल विस्मयकारी स्पंदनों के सागर में हो। तुम उसके बारे में बिलकुल नहीं जानते, क्योंकि तुम ग्रहणशील नहीं हो। और तुम्हारे अंदर ऐसा प्रतिरोध है कि अगर कोई चीज अंदर घुसने में सफल हो जाये तो उसका तीन-चौथाई भाग उग्रता से बाहर फेंक दिया जाता है क्योंकि तुम उसे आत्मसात नहीं कर सकते ...। मैं साधारणतः इस विषय पर बात नहीं करती, लेकिन अब चूँकि हम इस विषय में बात कर रहे हैं इसलिए तुम्हें बता रही हूँ। और शायद एक दिन मैं तुम्हें उसका उदाहरण दूंगी। यह ऐसी बात है जिस पर विश्वास नहीं होता। उदाहरण के लिए, शक्तियों की चेतना को लो। प्रेम की शक्ति की तरह समझने की शक्ति, सृजन-शक्ति (हर चीज के लिए वही बात है, संरक्षण की शक्ति, वृद्धि की शक्ति आदि, और प्रगति की शक्ति, हर चीज के लिए) की चेतना को लो, केवल यह चेतना जो हर चीज को घेरे हुए है, हर चीज में प्रवेश करती है, जो हर जगह है, हर चीज में है ...। यह ऐसी लगती है मानो एक उग्रता हो जो अपने-आपको ऐसी सत्ता पर आरोपित करना चाहती है जो उसे ग्रहण करने या सहन करने में असमर्थ है और अच्छे-से-अच्छे की बात कर रही हूँ, लेकिन हर एक में बड़ा या छोटा, कम या अधिक महत्वपूर्ण भाग होता है जिसमें अभी तक सद्भावना नहीं है, जो अभी दुर्भावना की सीमा पर है और किसी भी मूल्य पर उस चीज को नहीं फेंकना चाहता जो वहाँ है। लेकिन

अगर तुम सचेतन हो और केवल श्वास लो, कुछ अधिक नहीं, बस इतना ही, तो तुम चेतना, प्रकाश, समझ, शक्ति, प्रेम और बाकी चीजों को सांस के साथ अंदर लोगे। और यह सब धरती पर व्यर्थ हो रहा है, क्योंकि धरती उसे लेने के लिए तैयार नहीं है। तो बस।

*CWM Vol. 5, p. 269* -श्रीमाँ

## ग्रहणशीलता के लिए विनम्रता आवश्यक

इसका पहला आधार है सच्चाई और सच्चाई के साथ आवश्यक है विनम्रता। क्या व्यक्ति सचमुच ग्रहण करना चाहता है ?

घमण्ड जितना तुम्हारे हृदय के द्वार बन्द कर देता है उतना कोई और वस्तु नहीं करती। जब तुम अपने में संतुष्ट रहते हो, तब यह तुम्हारे भीतर का अंत ही होता है जो तुम्हें यह मानने ही नहीं देता कि तुम्हारे अंदर भी कोई कमी है, कि तुम भी गलतियां करते हो, कि तुम भी अपूर्ण हो, कि कहीं कुछ छूट गया है, कि तुम ... । जानते हो, तुम्हारी प्रकृति में कोई ऐसी चीज मौजूद है जो इस प्रकार कठोर पड़ जाती है, जो अपना दोष स्वीकार करना नहीं चाहती – यही चीज तुम्हें उच्चतर वस्तु को ग्रहण करने से रोकती है। बहरहाल, इस अनुभव को प्राप्त करने के लिए तुम कोशिश कर सकते हो। यदि तुम संकल्प-शक्ति के बल पर अपनी सत्ता के एक छोटे-से भाग से भी यह कहलवा सको कि "ओह ! हां, हां, यह मेरी भूल थी, मुझे ऐसा नहीं होना चाहिये था, मुझे ऐसा करना और सोचना भी नहीं चाहिये था, हां, मेरा दोष है," यदि तुम उससे यह स्वीकार करा सको तो शुरू-शुरू में तो, जैसाकि मैंने अभी-अभी कहा, तुम्हें इससे कष्ट होगा, पर यदि तुम इस पर अड़े रहे, जबतक कि वह पूरी तरह स्वीकृत न हो जाये, तब वह भाग तत्काल ही खुल जायेगा - वह खुल जायेगा और प्रकाश का पुंज उसके अंदर प्रवेश कर जायेगा, और तब तुम बाद में इतने आनंदित हो उठोगे कि तुम अपने से पूछोगे : "आखिर क्यों, मैं इतने समय तक आखिर क्यों अड़ा हुआ था ? कैसा मूर्ख था मैं!" – श्रीमाँ

7

# प्रगति

**प्रगति**
*वह कारण जिसके लिए*
*हम धरती पर हैं*
*(श्रीमाँ द्वारा दिया गया पुष्प*
*का आध्यात्मिक अर्थ*
*तथा व्याख्या)*
Botanical name:
*Catharanthus roseus*

यदि हम समग्र रूप से प्रगति करना चाहते हैं तब हमें अपनी सचेतन सत्ता में एक सुदृढ़ तथा शुद्ध मानसिक समन्वय का निर्माण करना होगा जो बाहरी प्रलोभनों से हमारी सुरक्षा का कवच बन जाये, हमें दूर भटक जाने से रोकने के लिए सरहद बन जाये, जीवन के अस्थिर सागर के पार जाने में हमारे पथ के प्रकाश-स्तम्भ के रूप में काम करे।

प्रगति के लिए अभीप्सा भी करनी होगी : व्यक्ति क्या है, कैसे है, वह जो करता है, जितना वह जानता है या जितना वह समझता है कि हम इतना जानते हैं उससे सन्तुष्ट नहीं रहना होगा बल्कि कुछ अधिक के लिए, कुछ अधिक उत्तम के लिए, महत्तर प्रकाश के लिए, विशालतर चेतना के लिए, एक सत्यतर सत्य तथा एक अधिक विश्वव्यापक अच्छाई के लिए सतत अभीप्सा करनी होगी। और इन सब के अतिरिक्त एक शुभकामना रखनी होगी जो कभी निराश नहीं करती।

*CWM Vol. 8, p. 205* — श्रीमाँ

यदि तुमने अपने आप से कहा है, मेरे बच्चो, कि "हम विश्व में भागवत संकल्प को व्यक्त करने के लिए यथासम्भव पूर्ण यन्त्र बनना चाहते हैं," तब इस यन्त्र को पूर्ण बनाने के लिए इसे परिष्कृत, शिक्षित, प्रशिक्षित करना होगा। इसे पत्थर के बेडौल टुकड़े के समान छोड़ देना नहीं होगा। जब तुम पत्थर से कुछ बनाना चाहते हो तब तुम्हें उसे छेनी से उत्कीर्ण करना होगा। जब तुम किसी आकारहीन पिण्ड को एक सुन्दर हीरे में बदलना चाहते हो तब तुम उसे छेनी से काटते हो। यह वही चीज है। जब तुम अपने मस्तिष्क औऱ शरीर से भगवान के लिए एक सुन्दर यन्त्र बनाना चाहते हो तब तुम्हें इसे संवर्धित करना होगा, तीक्ष्ण करना होगा, परिष्कृत करना होगा। जिस चीज की कमी हो उसे पूरा करना होगा, उसे पूर्ण बनाना होगा।

"जीवन में एक भी ऐसा क्षण नहीं होता, कोई ऐसी परिस्थिति नहीं होती जिसे प्रगति के लिए सुअवसर न बनाया जा सके ; तब यह कौन-सी प्रगति है जो आज मैं करने जा रहा हूँ? ... मैं अपना समस्त तुच्छ व्यक्तित्व भगवान को अर्पित करता हूँ। मैं चाहता हूँ कि मैं उनके लिए एक ऐसा उत्तम यन्त्र बनूँ जिसके माध्यम से वे अपने आप को अभिव्यक्त कर सकें, कि मैं एक दिन रूपान्तर के लिए योग्य बन सकूं। आज मैं क्या करने जा रहा हूँ? मैं उस कक्षा में जा रहा हूँ, इस विषय में मेरा मन नहीं लगता। लेकिन यदि इसमें मेरी रुचि नहीं है तब निश्चय ही मुझमें कुछ कमी है, तब मेरे मस्तिष्क में कुछ कोषाणुओं का अभाव है। परन्तु तब, यदि ऐसा है, मैं पता लगाने की कोशिश करुंगा। मैं ध्यानपूर्वक सुनूंगा, एकाग्रचित्त रहूंगा और सबसे परे मैं इस प्रकार की चपलता को अपने मन से हटा दूंगा जो मुझे समझ में नहीं आने पर विषय को नीरस बना देती है। मैं क्यों ऊबन महसूस करता हूँ? ... क्योंकि मैं प्रगति नहीं करता।" जब व्यक्ति प्रगति नहीं करता, वह नीरसता अनुभव करता है – वृद्ध, युवा, हरेक व्यक्ति - क्योंकि हम यहाँ धरती पर प्रगति करने के लिए हैं। यदि हम प्रति क्षण प्रगति नहीं करते, तब सचमुच यह उबाऊ होता है, नीरस होता है, यह हमेशा रोचक नहीं होता, सुखद से कोसों दूर। "अतः आज मैं यह पता करूंगा कि इस कक्षा में मैं कितनी प्रगति कर

सकता हूँ ; कुछ है जो मैं नहीं जानता और जिसे मैं सीख सकता हूँ।" धरती पर जीवन को प्रगति के लिए एक क्षेत्र बनाया गया है और यदि अधिकतम क्षमता तक हम प्रगति करते हैं तब धरती पर अपने जीवन से हम अधिकतम लाभ उठा सकते हैं। और तब व्यक्ति प्रसन्नता अनुभव करता है। जब व्यक्ति सर्वोत्तम करता है तब वह प्रसन्न रहता है।

*CWM Vol. 5, p. 47* — श्रीमाँ

## सतत प्रगति

वास्तव में ऐसा इसलिए होता है क्योंकि प्रगति का वह आनन्द नहीं होता। प्रगति का आनन्द कल्पना करता है कि यदि तुमने वह लक्ष्य सिद्ध कर लिया है जो तुमने अपने सामने रखा है - इस लक्ष्य को लो जो हम लोगों ने निश्चित किया है, यदि हम लोग अतिमानसिक जीवन का लक्ष्य पूरा कर लेते हैं, अतिमानसिक चेतना का लक्ष्य सिद्ध कर लेते हैं - तब प्रगति का यह आनन्द कहता है, -"ओह ! परन्तु यह काल की अनन्तता में मात्र एक चरण होगा। इसके बाद कुछ और होगा और तब उसके बाद दूसरा और फिर दूसरा, तथा हमेशा व्यक्ति को आगे बढ़ते रहना होगा।" और यही तुम्हें आनन्द से परिपूर्ण कर देता है, जबकि यह विचार, "आह ! अब मैं आराम कर सकता हूँ" यह अन्त है, "मैंने अपना लक्ष्य सिद्ध कर लिया है, मैं अब, जो कुछ मैंने कर लिया है, उसका आनन्द लेने जा रहा हूँ।" ओह, यह कितना निरानन्द है! तुरन्त व्यक्ति वृद्ध और अवरुद्ध हो जाता है।

युवावस्था की परिभाषा, हम लोग कह सकते हैं कि युवावस्था सतत विकास तथा अविच्छिन्न प्रगति का नाम है - और सम्भावनाओं, क्षमताओं की वृद्धि, कर्मक्षेत्र और चेतना का विस्तार तथा उसके कार्यान्वयन में प्रगति।

स्वभावतः किसी ने मुझसे कहा, "अतः व्यक्ति जब बढ़ना बन्द कर देता है तब वह क्या युवा नहीं रह जाता?" मैंने उत्तर दिया, "निस्सन्देह, मैं यह कल्पना नहीं करती कि व्यक्ति अनन्त काल तक बढ़ता ही रहता है! परन्तु व्यक्ति शुद्धतः

शारीरिक रूप की अपेक्षा दूसरी तरह से विकास कर सकता है।"

कहने का तात्पर्य है कि मानव जीवन में अनुक्रमिक अवधियाँ आती हैं। जब तुम आगे बढ़ते हो तब एक चीज के विकास का एक रूप में अन्त आता है और यह अपना रूप बदल देता है ... स्वभावतः अभी वर्तमान समय में हम सीढ़ी के अन्त तक ऊपर जाते हैं और फिर नीचे आ जाते हैं ; किन्तु यह सचमुच शर्म की बात है, ऐसा नहीं होना चाहिये, यह बुरी आदत है। परन्तु जब हमारा शरीर बढ़ना बन्द कर देता है, जब हम यथासम्भव सर्वोत्तम ऊँचाई तक बढ़ जाते हैं तब वृद्धि की इस शक्ति को एक ऐसी शक्ति में रूपान्तरित कर सकते हैं जो शरीर को पूर्ण बनाये, इसे अधिक से अधिक सुदृढ़ करे, अधिक से अधिक स्वस्थ करे जिससे इसमें एक वर्धनशील निरोधक शक्ति हो और हम लोग शारीरिक सौन्दर्य का एक आदर्श बनें या इसे प्रस्तुत करने के लिए शारीरिक प्रशिक्षण का अभ्यास करेंगे। और फिर, साथ ही साथ, हम लोग धीरे-धीरे चरित्र की पूर्णता, चेतना, ज्ञान, शक्तियों की पूर्णता तथा अन्ततः अद्‌भुत रूप से शिवं और सत्यं की परिपूर्णता में भागवत सिद्धि और उसके पूर्ण प्रेम की खोज का आरम्भ करेंगे।

और यह निरन्तर करना होगा। जब चेतना के एक खास स्तर पर पहुँच जाते हैं, जब इस चेतना को भौतिक जगत में सिद्ध कर लिया गया है और जब इस चेतना की छवि में भौतिक जगत को रूपान्तरित कर लिया गया है, तब तुम एक और सीढ़ी ऊपर चढ़ोगे और दूसरी चेतना में पहुँच जाओगे – और तुम पुनः आरम्भ करोगे।

किन्तु यह आलसी लोगों के लिए नहीं है। यह उनके लिए है जो प्रगति पसन्द करते हैं। उनके लिए नहीं जो आते हैं और कहते हैं, "ओह, अपने जीवन में मैंने कठिन परिश्रम किया है, अब मैं आराम करना चाहता हूँ, क्या आप कृपया आश्रम में स्थान देंगी?" मैं उनसे कहती हूँ, "यहाँ नहीं। यह स्थान आराम करने के लिए नहीं है क्योंकि तुमने जितना कठिन परिश्रम किया है, यह उससे भी अधिक कठिन परिश्रम करने का स्थान है।" अतः पहले उन्हें रमण महर्षि के आश्रम में भेज दिया करती थी। "वहाँ जाओ, तुम ध्यान में

चले जाओगे और आराम पाओगे।" अब यह सम्भव नहीं है, इसलिए मैं उन्हें हिमालय में भेज देती हूँ और कहती हूँ, "जाओ और शाश्वत हिम शिखरों के समक्ष बैठो। यह तुम्हारा भला करेगा।"

*CWM Vol. 8, p. 20* — श्रीमाँ

## प्रगति के लिए साहसपूर्ण संकल्प

निराशा के कारण तुम एक प्रकार की मूर्खता करते हो, दुष्टता के कारण दूसरे प्रकार की। निराशा की मूर्खताएं व्यक्तिगत रूप से तुमसे सम्बन्धित हैं जब कि दुष्टता की मूर्खताएं दूसरों से सम्बन्ध रखती हैं। और कभी-कभी ये परवर्ती मूर्खताएं अत्यन्त गंभीर होती हैं। यदि तुम्हारे अन्दर थोड़ी-सी सद्भावना हो तब अच्छा हो यदि आवेश के समय कोई क्रिया न करो और अपने आप से कहो, "मैं कोई गति नहीं करूंगा और तूफान के गुजर जाने की प्रतीक्षा करूंगा।" क्योंकि चन्द क्षणों में व्यक्ति महीनों के नियमित प्रयास को नष्ट कर सकता है।

किन्तु यहाँ मैं एक सान्त्वना देती हूँ। ये संकट उन लोगों के मामले में कम खतरनाक होते हैं जिन्होंने अपने चैत्य पुरुष के साथ इतना पर्याप्त सम्पर्क स्थापित कर लिया है जिससे वे आदर्श की अभीप्सा तथा चेतना की ज्योति को जीवन्त बनाये रख सकें। वे इस चेतना की मदद से अपने प्राण के साथ उद्दण्ड बालक के समान धैर्य और अध्यवसाय से, सत्य और ज्योति दिखा कर, विश्वास दिलाने के प्रयास द्वारा, उसमें सद्भाव जगा कर जो क्षण भर के लिए आवृत हो गया था, निपट सकते हैं।

और अन्तिम सान्त्वनाः उनके लिए जो वास्तव में निष्कपट हैं, वास्तव में सद्भावपूर्ण हैं; इन सभी आवेशों को प्रगति के साधन में परिणत किया जा सकता है। हर बार जब भी इस प्रकार का आक्रमण हो, एक प्रकार का तूफान आये, तुम संकट को एक नयी प्रगति में बदल सकते हो, उसे लक्ष्य की ओर एक और कदम बना सकते हो। यदि तुम्हारे अन्दर आवेश के कारण पर

सीधी दृष्टि डालने की आवश्यक निष्कपटता हो – जो गलत कार्य किया है, गलत विचार सोचा है, गलत महसूस किया है – यदि उस दुर्बलता को देख सको, जो हिंसा या घमण्ड (क्योंकि, मैं यह कहना भूल गई कि प्राण मन से कहीं अधिक दंभी है) का भाव था, यदि उन सब पर सीधी नजर डाल सको और ईमानदारी व निष्कपटता से स्वीकार कर सको कि जो कुछ हुआ है वह तुम्हारी भूल थी तब तुम प्रभावित बिन्दु पर मानों तुम लाल गर्म लोहा रख देते हो। तुम दुर्बलता को संशोधित कर सकते हो और एक नयी चेतना में बदल देते हो। और तूफान के बाद तुम देखते हो कि तुम कुछ अधिक विकसित हो गये हो, तुमने सचमुच कुछ प्रगति की है।

प्रगति धीमी हो सकती है, पतन लगातार हो सकते हैं, किन्तु यदि साहसपूर्ण संकल्प बना रहे तब एक दिन व्यक्ति की विजय सुनिश्चित है और वह देखेगा कि सभी कठिनाइयाँ सत्य की दीप्तिमान चेतना के समक्ष विलीन हो गई हैं।

*CWM Vol. 4, p. 51* – श्रीमाँ

## निराशा और प्रगति

निराशा कभी भी प्रगति के लिए एक आवश्यकता नहीं बन सकती, यह हमेशा दुर्बलता और तमस का संकेत होती है। यह प्रायः विरोधी शक्ति की उपस्थिति का चिह्न है। यानी ऐसी शक्ति का चिह्न जो जानबूझ कर साधना के विरुद्ध कार्य करती है।

अतः जीवन की सभी परिस्थितियों में तुम्हें निराशा से बचने के लिए हमेशा बहुत सावधान रहना होगा। इसके अतिरिक्त, उदास, खिन्न, निराश होने की आदत वास्तव में घटनाओं पर निर्भर नहीं करती बल्कि प्रकृति में श्रद्धा की कमी पर निर्भर करती है। जिस व्यक्ति में श्रद्धा है, भले ही केवल अपने आप में हो, तब भी वह सभी अत्यन्त विरोधी कठिनाइयों, सभी परिस्थितियों का सामना बिना हतोत्साह या निराशा के कर सकता है। वह अन्त तक मर्द की तरह संघर्ष करता है। जिन प्रकृतियों में श्रद्धा का अभाव होता है उनमें

सहिष्णुता और साहस का भी अभाव होता है।...

जहाँ तक प्रगति के लिए जिन आवश्यक चीजों का प्रश्न है, विकासशील संसार में हर चीज आवश्यक रूप से प्रगति के लिए सहायक है। परन्तु व्यक्तिगत प्रगति असंख्य अनुभवों से होते हुए अनेक जन्मों तक होती रहती है। जन्म और मृत्यु के बीच एक ही जीवन के आधार पर निर्णय नहीं किया जा सकता। कुल मिला कर यह निश्चित है कि एक जीवन की असफलता और पराजय का अनुभव आत्मा के विकास के लिए उतना ही लाभदायक है जितना एक जीवन की सफलता और विजय का अनुभव। बल्कि एक सामान्य जीवन से भी अधिक जिसमें कोई खास घटना का अनुभव नहीं होता जैसा कि मानव जीवन की सामान्य स्थिति होती है जिसमें सफलता-असफलता, संतुष्टि और असन्तुष्टि, दुःख-सुख का मिश्रण होता है और एक के बाद दूसरे की आवृति होती रहती है।

*CWM Vol. 10,p.56 (4th May 1960)* — श्रीमाँ

## निष्काम प्रगति

योग में हर चीज के समान प्रगति के लिए प्रयास प्रगति के प्रयास के प्रेम के लिए ही किया जाना चाहिये। प्रयास के आनन्द के लिए। प्रगति के लिए अभीप्सा अपने आप में पर्याप्त होनी चाहिये, परिणाम से बिलकुल स्वतंत्र। योग में हर चीज जो व्यक्ति करता है उसे करने के आनन्द के लिए किया जाना चाहिये न कि परिणाम के उद्देश्य से जिसे वह प्राप्त करना चाहता है ... जैसा कि जीवन में, सभी वस्तुओं में वास्तव में हम लोग करते हैं। परिणाम हम लोगों के हाथ में नहीं होता। और यदि हम उचित मनोवृति बनाये रखना चाहते हैं, तब हमारा कर्म करना, हमारा महसूस करना, हमारा सोचना, प्रयास करना सहज भाव से, अनायास होना चाहिये, क्योंकि यही हमें करना होगा, न कि उससे प्राप्त होनेवाले परिणाम को दृष्टि में रख कर।

*CWM Vol. 9,p.316* — श्रीमाँ

## सन्देह और प्रगति

अनेक चीजों में से एक चीज जो मानवता को सर्वाधिक प्रगतिशील बना सकती है वह है उस चीज का आदर करना जिसे वह नहीं जानती-समझती, स्वेच्छापूर्वक उस चीज को मान्यता देना जिसे वह जानने में असमर्थ है, इसलिए मूल्यांकन करने में भी असमर्थ है। हम लोग निरन्तर ठीक इसके विपरीत करते हैं। हम लोग उन चीजों के विषय में अन्तिम निर्णय सुना देते हैं जिनका हम कुछ भी ज्ञान नहीं रखते और हठधर्मिता के साथ कहते हैं, "यह सम्भव है, वह असम्भव है," जब कि हम जिसके बारे में बोल रहे हैं उसका हमें कुछ भी ज्ञान नहीं होता। और हम अकड़ में रहते हैं क्योंकि हम लोग उन चीजों पर शक करते हैं जिसका हमने कभी ज्ञान प्राप्त नहीं किया।

मनुष्य यह विश्वास करते हैं कि सन्देह करना श्रेष्ठता का परिचायक है जब कि यह वास्तव में हीनता का सूचक है।

सन्देहवाद और सन्देह दोनों प्रगति की सबसे बड़ी बाधाएं हैं। ये अज्ञान में धृष्टता को जोड़ देते हैं।

*CWM Vol. 10,p 27 (21 Nov 1958)* -श्रीमाँ

## प्रगति ही यौवन है

सुखी तथा सफल जीवन के लिए सच्चाई, नम्रता, अध्यवसाय और प्रगति के लिए कभी न बुझनेवाली प्यास जरूरी है। सबसे बढ़कर यह कि तुम्हें विश्वास हो कि प्रगति की संभावना असीम है। प्रगति यौवन है, तुम सौ वर्ष की उम्र में भी युवक हो सकते हो।

यौवन की परिभाषा हम कह सकते हैं कि यह है : सतत विकास और अविच्छिन्न प्रगति। और है क्षमताओं का, संभावनाओं का विकास, कर्मक्षेत्र का विकास और चेतना का प्रसार, और समस्त ब्योरों की उपलब्धि की ओर प्रगति। तुम जितने वर्ष जिये हो उनकी संख्या तुम्हें बूढ़ा नहीं बनाती। तुम बूढ़े तब होते हो जब प्रगति करना बंद कर देते हो।

जैसे ही तुम्हें लगे कि तुम्हें जो कुछ करना था वह कर चुके, जैसे ही तुम अनुभव करो कि तुम्हें जो कुछ जानना था वह जान चुके, जैसे ही तुम बैठकर अपने परिश्रम का फल भोगना चाहो औऱ यह सोचो कि तुम जीवन में काफी कुछ कर चुके तो तुम एकदम बूढ़े हो जाते हो और तुम्हारा क्षय शुरू हो जाता है।

इसके विपरीत, जब तुम्हें यह विश्वास हो कि जो जानना बाकी है उसकी तुलना में तुम जो जानते हो वह कुछ भी नहीं है; जब तुम्हें लगे कि तुमने जो कुछ किया है वह, जो कुछ करना बाकी है उसका केवल आरंभ बिन्दु है, जब तुम भविष्य को प्राप्त करने योग्य अनंत सम्भावनाओं से भरे चमकते सूर्य के रूप में देखो तब तुम युवा हो। तुमने धरती पर चाहे जितने वर्ष भी क्यों न बिताये हों, तुम युवा और भावी कल की उपलब्धियों से समृद्ध हो।

और अगर तुम नहीं चाहते कि तुम्हारा शरीर तुम्हें धोखा दे तो व्यर्थ की उत्तेजना में अपनी शक्ति नष्ट करने से बचो। तुम जो भी करो शांत, स्थिर और प्रकृतिस्थ हो कर करो। शांति और नीरवता में अधिकतम शक्ति है।

सुखी औऱ सार्थक जीवन के लिए आवश्यक तत्त्व हैं निष्कपटता, विनय, अध्यवसाय औऱ प्रगति के लिए कभी न बुझनेवाली प्यास। और सबसे बढ़ कर तुम्हें प्रगति की असीम संभावना के बारे में विश्वास होना चाहिये।

—श्रीमाँ

## प्रगति के तीन चरण

प्रगति के तीन चरण हैं : पहला है व्यष्टि बनना, दूसरा है व्यष्टि को निवेदित कर देना जिससे वह भगवान को पूरी तरह समर्पित हो जाये और उनके साथ तदात्म हो जाये। और तीसरा है कि भगवान इस व्यष्टि को अधिकार में ले लें और अपनी छवि की सत्ता में उसे रूपान्तरित कर दें यानी वह व्यष्टि भी भगवान बन जाये।

*CWM Vol. 7,p 402* — श्रीमाँ

# ८

# साहस

**साहस**

*निर्भीक, वह सभी ख़तरों का सामना करता है*

*(श्रीमाँ द्वारा दिया गया पुष्प का आध्यात्मिक अर्थ तथा व्याख्या)*

*Botanical name:*
Calotropis gigantea

1. साहस है किसी भी रूप में भय की पूर्ण अनुपस्थिति।
2. साहस : निर्भय, यह सब प्रकार के खतरों का सामना करता है।
3. पूर्ण साहस : चाहे क्षेत्र कुछ भी हो, खतरा कैसा भी हो, मनोवृति एक-सी रहती है - धीर और विश्वासपूर्ण।
4. साहस आत्मा की श्रेष्ठता की पहचान है। किन्तु साहस को स्थिर और अपने आप का स्वामी, उदार तथा परोपकारी होना चाहिये।
5. सच्चे साहस में अधीरता तथा जल्दीबाजी नहीं होती।
6. दुःसाहस को साहस समझने की भूल कभी न करो, न उपेक्षा को धैर्य समझने की भूल कभी करो।
7. प्राणिक साहस को उपयोगी बनाने के लिए नियंत्रित किया जाना चाहिये।
8. अपने दोषों को मान लेना उदात्ततम साहस है।

9. अपनी भूलों को स्वीकार करने की अपेक्षा कोई और बड़ा साहस नहीं होता।
10. सदा सत्यवादी बने रहना सबसे बड़ा साहस है।
11. भगवान के साथ पूर्ण रूप से निष्कपट बनने का साहस रखो।
12. जिसके पास साहस है वह दूसरों को साहस दे सकता है ठीक वैसे ही जैसे मोमबत्ती की ज्वाला दूसरी मोमबती को जला सकती है।
13. यह बिलकुल आवश्यक है कि जिनके पास साहस है उन्हें उनके लिए कुछ साहस रखना चाहिये जिनके पास कुछ साहस नहीं है।
14. नैतिक साहस तथा सहिष्णुता प्राप्त करना प्रायः भौतिक साहस और सहिष्णुता प्राप्त करने से कहीं अधिक कठिन है।

*CWM Vol. 14,p.170* —श्रीमाँ

साहस और प्रेम एक मात्र अनिवार्य सद्‌गुण हैं; यदि अन्य सभी सद्‌गुण निस्तेज अथवा सुसुप्त हो जायें, तब भी ये दोनों आत्मा को जीवित बचा लेंगे।

## साहस और अभीप्सा

मुझे याद है कि एक बार मैंने साहस को अनेक पूर्णताओं में से एक पूर्णता के रूप में बताया था ; मुझे याद है एक सूची में इसे लिख लिया था। परन्तु इस साहस का अर्थ है सर्वोच्च साहसिक कार्य के लिए रुचि रखना। और सर्वोच्च साहसिक कार्य के लिए यह रुचि अभीप्सा है - एक ऐसी अभीप्सा जो तुम पर पूरी तरह हावी हो जाती है और तुम्हें उछाल देती है, बिना हिसाब किये, बिना कुछ बचाये, बिना पीछे हटने की किसी सम्भावना के भागवत अनुसंधान के एक महान साहसिक कार्य में, भागवत मिलन के एक महान जोखिम में, और इससे भी एक महानतर साहस भरे भागवत सिद्धि के कर्म में। तुम इस साहसिक कार्य में बिना पीछे देखे, बिना एक मिनट के लिए भी कुछ यह पूछे अपने आप को झोंक देते हो कि "क्या होने जा रहा है?"

क्योंकि यदि तुम यह पूछो कि क्या होने जा रहा है तब तुम कभी आरम्भ न करोगे, तुम हमेशा वहीं पर चिपके रहोगे, उसी स्थान पर जड़ जमाये कुछ खो जाने, अपना सन्तुलन बिगड़ जाने के भय से ग्रस्त। इसीलिए मैं साहस की बात करती हूँ, किन्तु वास्तव में यह है अभीप्सा। ये साथ-साथ चलते हैं। एक सच्ची अभीप्सा साहस से भरी हुई चीज होती है।

## साहस के भिन्न-भिन्न प्रकार

*प्रश्न : जब व्यक्ति आत्महत्या करता है तब वह कष्ट क्यों झेलता है?*

उत्तर : व्यक्ति आत्महत्या क्यों करता है ? क्योंकि वह व्यक्ति कायर होता है ... और कायर व्यक्ति हमेशा कष्ट झेलता है।

*प्रश्न : क्या वह अगले जन्म में पुनः कष्ट झेलता है?*

उत्तर : चैत्य पुरुष एक निश्चित उद्देश्य के साथ कुछ अनुभूतियों के एक समुच्चय से गुजरने, कुछ सीखने तथा प्रगति करने के लिए आता है। तब यदि तुम इसके कार्य के पूर्ण होने से पूर्व चले जाते हो, इसे अपने कार्य को पूरा करने के लिए कहीं अधिक कठिन परिस्थितियों में पुनः आना पड़ेगा। इस प्रकार तुमने एक जीवन में जो सब टाल दिया था दूसरे जीवन में उन्हें पुनः पाओगे और वे अधिक कठिन होंगे, और यदि इस प्रकार न भी जाओ, यदि जीवन में कुछ कठिनाइयों को जीतना है, सामान्यतः जिसे हम कहते हैं कि तुम्हें एक परीक्षा में उत्तीर्ण होना है, यदि तुम इस परीक्षा में से नहीं गुजरते या उससे पीठ फेर लेते हो, यदि इसे उत्तीर्ण किये बिना चले जाते हो, तब तुम्हें अगली बार इसे उत्तीर्ण करना होगा और यह पहले से कहीं अधिक कठिन होगा।

लोग अत्यन्त अज्ञानी हैं और वे सोचते हैं कि बस इतना ही है : जीवन और मृत्यु ; जीवन कष्टों का पुंज है और मृत्यु एक शाश्वत शान्ति है। परन्तु

यह ऐसा बिलकुल नहीं है। और सामान्यतः जब व्यक्ति मनमाने ढंग से तथा अज्ञानपूर्ण आवेश में शरीर से बाहर चला जाता है तब वह सीधे प्राणिक जगत में प्रवेश करता है जो इन आवेगों और इस अज्ञान से भरा है। इस प्रकार जिन कठिनाइयों से व्यक्ति बचना चाहता था वह उन्हें पुनः पाता है परन्तु अब सुरक्षा के लिए आधार नहीं होता जो उसे शरीर में मिलता था। क्योंकि यदि तुम्हें कभी दुःस्वप्न आया हो, कभी प्राणिक जगत में अविवेकपूर्ण भ्रमण का अवसर आया हो तब तुम्हारा समाधान होता है जाग्रत होकर शीघ्र ही शरीर में वापस प्रवेश। परन्तु जब तुमने शरीर नष्ट कर दिया है तब तुम्हारी सुरक्षा का कोई आधार नहीं रह जाता। इस प्रकार तुम अपने आप को सतत रूप से दुःस्वप्न में पाते हो जो सुखद नहीं होता। क्योंकि दुःस्वप्न से निराकरण के लिए तुम्हारा चैत्य चेतना में रहना आवश्यक है, और जब तुम चैत्य चेतना में रहते हो तब तुम सुनिश्चित हो सकते हो कि वे चीजें तुम्हें कष्ट नहीं देंगी। यह वास्तव में दीर्घकालीन प्रयास करने के बदले, जैसा कि मैंने कहा है, अज्ञानपूर्ण अन्धकार की गति है और एक भीषण कायरतापूर्ण कार्य है।

*प्रश्न : माँ, यदि व्यक्ति कायरतापूर्वक कठिनाइयों से बचता है, यदि अगली बार कठिनाइयाँ और अधिक बढ़ जाती हैं तब ये कब तक बनी रहती हैं?*

यह तब तक बनी रहती है जब तक व्यक्ति कायर बना रहता है, जब तक वह समझ नहीं लेता कि ऐसा नहीं करना चाहिये, जब तक वह अपनी कायरता पर विजय नहीं प्राप्त कर लेता। ऐसी कोई चीज नहीं है जिस पर विजय नहीं प्राप्त की जा सकती, यदि व्यक्ति ऐसा चाहे और निश्चय करे।

*प्रश्न : क्या व्यक्ति अज्ञान के कारण कायर हो जाता है ? किस कारण व्यक्ति कायर बन जाता है ? अज्ञान ?*

उत्तर : इसका अर्थ यह हुआ कि व्यक्ति सभी बुरी चीजों का कारण अज्ञान को

समझ सकता है। परन्तु मैं समझती हूँ कि व्यक्ति कायर इसलिए बन जाता है क्योंकि व्यक्ति तामसिक होता है और प्रयास करने से डरता है। व्यक्ति कायर नहीं हो इसके लिए उसे प्रयास करना होगा, प्रयास से प्रारम्भ करना होगा और बाद में यह बहुत रोचक बन जाता है। परन्तु सर्वोत्तम वस्तु है अपने आप से इस प्रकार के पलायन को वश में करने का प्रयास करना। वस्तुस्थिति का सामना करने के बदले, व्यक्ति पीछे हट जाता है, पलायन करता है, पीठ फेर लेता है, भाग जाता है, क्योंकि प्राथमिक प्रयास कठिन होता है। और इस प्रकार प्रयास करने से जो तुम्हें रोकता है वह है निष्क्रिय, अज्ञानी प्रकृति।

जैसे ही तुम राजसिक प्रकृति में प्रवेश करते हो, तुम प्रयास करना पसन्द करने लगते हो। और राजसिक लोगों का कम से कम एक लाभ तो है कि वे साहसी होते हैं जब कि तामसिक लोग कायर होते हैं। प्रयास करने से डर ही व्यक्ति को कायर बना देता है। क्योंकि एक बार जब तुम आरम्भ कर देते हो, एक बार जब तुम निर्णय ले लेते हो और प्रयास आरम्भ कर देते हो, तुम रुचि लेने लगते हो। ठीक इसी कारण से कुछ लोग अपने पाठ सीखना नहीं चाहते, अपने अध्यापक की बात सुनना पसन्द नहीं करते। यह तामसिकता है, यह निद्रालुता है, यह प्रयास को टालता है जो कि वस्तु को पकड़ने, अधिकृत कर लेने और अपने पास रखने के लिए आवश्यक है। इस प्रकार यह अर्धनिद्रा है। यह भौतिक रूप से वही चीज है, यह प्राणी की निद्रावस्था है, तमस है। कुछ ऐसे लोग होते हैं जो... मैं ऐसे लोगों को जानती हूँ जो भौतिक रूप से बहुत साहसी थे, पर नैतिक रूप से अत्यन्त डरपोक, क्योंकि मनुष्य भिन्न-भिन्न भागों से निर्मित होते हैं। उनकी भौतिक सत्ता क्रियाशील तथा साहसिक हो सकती है और उनकी नैतिक सत्ता कायरता से भरपूर। मैं इसके विपरीत उदाहरणों को भी जानती हूँ : मैं ऐसे लोगों को जानती हूँ जो अन्दर से बहुत साहसी थे और बाहर से वे अत्यन्त कायर। परन्तु इन लागों में कम से कम आन्तरिक संकल्प का लाभ था और जब वे कांपने लगते तब भी वे अपने आप को संभाल लेते। एक बार मुझसे एक प्रश्न पूछा गया, एक मनोवैज्ञानिक प्रश्न। यह प्रश्न एक ऐसे व्यक्ति के द्वारा किया गया जो जंगली

जानवरों का क्रय-विक्रय करता था। उसके पास एक पशु-संग्रहालय था और वह सब स्थानों पर जंगली जानवरों को खरीदा करता था, सभी देशों में जहाँ वे पकड़े जाते हैं और यूरोप के बाजारों में बेचा करता था। वह आस्ट्रियावासी था, शायद। वह पेरिस आया था और उसने मुझसे कहा, "मुझे दो प्रकार के सधानेवालों से निपटना पड़ता है। मैं जानना चाहता हूँ कि इन दोनों में कौन अधिक साहसी होता है। कुछ ऐसे लोग होते हैं जो पशुओं से बहुत प्रेम करते हैं। वे उन्हें इतना प्यार करते हैं कि वे पिंजड़े में इस बात का थोड़ा भी विचार किये कि वह खतरनाक साबित हो सकता हैं प्रवेश कर जाते हैं, मानों एक मित्र एक मित्र के घर में प्रवेश करता है और उनसे काम लेते हैं, यह सिखाते हैं कि चीजें कैसे की जाती हैं, तनिक भी भय का विचार किये बिना उनसे काम करवाते हैं। मैं ऐसे लोगों को जानती थी जो अपने पास चाबुक भी नहीं रखते थे। वे अन्दर जाते और अपने जानवरों से ऐसे मैत्रीभाव से बात करते कि सब कुछ ठीक-ठाक हो जाता। परन्तु इससे वे उनसे एक दिन खा लिये जाने से बच नहीं पाये। परन्तु फिर भी, यह एक प्रकार है। दूसरे प्रकार के वे लोग होते हैं जो प्रवेश करने से पहले इतने भयभीत रहते हैं कि वे कांपने लगते हैं। परन्तु वे प्रयास करते हैं, वे अत्यन्त नैतिक प्रयास करते हैं और बिना भय-प्रदर्शन के वे प्रवेश करते और जानवरों से काम करवाते।"

तब उसने कहा, "मैंने दो रायें सुनी हैं :कुछ लोग कहते हैं कि भय को जीतने में कहीं अधिक साहसिकता है अपेक्षाकृत भयरहित होने में। ... यही समस्या है। अतः इन दोनों प्रकार में कौन-सा वास्तविक साहसी है ?"

शायद एक तीसरा प्रकार है, जो सचमुच साहसी है, इन दोनों से कहीं अधिक साहसी। वह ऐसा व्यक्ति होता है जो खतरे से पूरी तरह अवगत रहता है, वह अच्छी तरह जानता है कि वह इन जानवरों पर विश्वास नहीं किया जा सकता। जिस दिन वे एक विशेष रूप से उत्तेजित अवस्था में होते हैं वे अचानक अप्रत्याशित रूप से तुम पर आक्रमण कर सकते हैं। परन्तु इससे उन्हें फर्क नहीं पड़ता। वे वहाँ कर्तव्य-कर्म के आनन्द के लिए जाते हैं बिना यह प्रश्न किये कि वहाँ कोई दुर्घटना होगी या नहीं होगी, मन में पूर्ण शान्ति

तथा शरीर में आवश्यक शक्ति और चेतना के साथ। यही स्थिति वास्तव में स्वयं उस व्यक्ति की थी। उसमें इतना दृढ़ संकल्प था कि बिना चाबुक के, केवल संकल्प के बल पर वह जो चाहता था, वही जानवरों से करवा लेता था। परन्तु वह अच्छी तरह जानता था कि यह खतरनाक पेशा है। उसमें इसके बारे में कुछ भी भ्रान्ति न थी।

*प्रश्न : मधुर माँ, आपने यह नहीं बताया कि कौन सबसे अधिक साहसी है?*

उत्तर :मैंने बताया तो कि तीसरे प्रकार का व्यक्ति सबसे अधिक साहसी है। साहस ... यह भिन्न-भिन्न स्थानों में साहस है। जो व्यक्ति जानवरों के साथ मैत्रिभाव रखता है, जो निर्भय है - यह इसलिए है कि उन दोनों में घनिष्ठ सम्बन्ध है, अनेक कारणों से घनिष्ठता है, सहज भौतिक मित्रता है। परन्तु हम लोग नहीं जानते कि वह कब अचानक खतरे के प्रति जाग्रत हो जायेगा, या अपना साहस बनाये रखेगा। यह सम्भव है कि वह शीघ्र ही इसे खो बैठे। दूसरी ओर दूसरे प्रकार के व्यक्ति में जानवरों के साथ घनिष्ठता नहीं है और वह उनसे डरता है। परन्तु उसके अन्दर काफी साहस औऱ सद्भावना है, एक संकल्प और मानसिक साहस तथा सम्भवतः प्राणिक साहस है जो उसे शारीरिक भय को नियंत्रित करने और निडर बनने में मदद करता है। परन्तु शरीर में भय बना रहता है। उसने केवल इसे नियन्त्रित कर रखा है। अब यह देखना है कि क्या शारीरिक साहस या नैतिक साहस महानतर है। एक दूसरे से महानतर नहीं है ; भिन्न-भिन्न क्षेत्रों का साहस है।

कुछ लोग सब प्रकार के खतरों के बीच निर्भय हो कर घूमते हैं। उनमें शारीरिक साहस होता है। दूसरे ... युद्ध के दिनों में एक घटना घटी, हम लोगों के पास यथासंभव अध्ययन-वृत है। जब सैनिक खन्दकों में थे और जब उनसे अपने खन्दक से बाहर आने और दूसरे में जाने के लिए कहा गया, वे खन्दक से बाहर आये दुश्मनों की गोलाबारी के बावजूद जो ठीक उनके सामने हो

रही थी ... तब स्वभावतः यदि तुम जरा भी जान की परवाह करते हो, तुम डर जाओगे या निःसन्देह कुछ लोग ऐसे हैं जो निडर बने रहेंगे, परन्तु वे तब योगी होंगे। सामान्यतः सैनिक लोग योगी नहीं होते, वे साधारण व्यक्ति होते हैं, क्योंकि हर व्यक्ति सैनिक बन जाता है। प्राचीन काल में, बहुत समय पहले, केवल युद्धप्रिय लोग ही सैनिक बनते थे। परन्तु अब ऐसा नहीं है। अब केवल शान्तिप्रिय बेचारे लोगों को लिया जाता है और सैनिक बना दिया जाता है और प्रत्येक को इसका सामना करना पड़ता है। इस प्रकार हजारों में एक भी ऐसा नहीं होता जिसमें सैनिक का जोश हो, बिलकुल ही नहीं ...

अपने भय को जीतने का अर्थ यह है कि सत्ता में एक ऐसा भाग है जो दूसरे से अधिक सबल है और उसमें कोई भय नहीं है और वह अपनी निर्भीकता उस पर आरोपित करता है जो डरता है। परन्तु इसका आवश्यक रूप से यह अर्थ नहीं है कि यह उस व्यक्ति से अधिक साहसी है जिसमें जीतने के लिए कोई भय नहीं है। क्योंकि जिस व्यक्ति में जीतने के लिए कोई भय नहीं है ... इसका अर्थ यह है कि वह सर्वत्र साहसी है, अपनी सत्ता के सभी भागों में निर्भीक है। अब, एक ऐसी निर्भीकता है जो निश्चेतना तथा अज्ञान से आती है। उदाहरणार्थ, बच्चे खतरों से अनजान रहते हैं। वे ऐसी चीजें करते हैं जो खतरों की जानकारी हो जाने पर नहीं करेंगे। इसका अर्थ यह है कि उनकी निर्भीकता अज्ञानपूर्ण है। परन्तु सच्चा साहस वह है जो वस्तुओं के पूरे ज्ञान के साथ हो यानी उसे मालूम हो कि खतरे की सभी सम्भावनाएं हैं और फिर भी बिना अपवाद के हर चीज का सामना करने के लिए तैयार हो।

## भय और साहस

भय एक अशुद्धता है, बृहत्तम अशुद्धताओं में से एक। उनमें से एक वह है जो सीधे उन अदिव्य शक्तियों से आता है, जो पृथ्वी पर भागवत कर्म को नष्ट करना चाहती हैं और योग करनेवालों का प्रथम कर्तव्य है कि वे अपनी चेतना से पूरी शक्ति लगा कर, पूरी सच्चाई से, यथायोग्य अपनी

समस्त सहनशीलता के साथ भय की छाया तक को भी निकाल फेंके। योग पथ पर चलने के लिए व्यक्ति को निर्भीक होना होगा, और भय जैसी क्षुद्र, तुच्छ, दुर्बल, घिनौनी चीज से बचना होगा। पथ पर चलने के लिए आवश्यक है एक दुर्दमनीय साहस, एक पूर्ण सच्चाई, एक निष्कपट आत्मदान जिससे व्यक्ति हिसाब-किताब या मोल-तोल न करे, कुछ लेने के विचार से न दे, सुरक्षा पाने के लिए श्रद्धा न करे, उसमें ऐसी निष्ठा न हो जिसे प्रमाण की आवश्यकता हो और केवल यही सचमुच सभी खतरों से तुम्हें एक सुरक्षित आश्रय प्रदान कर सकता है।

## साहस-श्रीमाँ द्वारा कथित कहानियाँ

तुम पानी में गिर पड़ते हो। तुम अथाह जलराशि से घबराते नहीं। अपने हाथ-पांव मारते हो और उस शिक्षक के प्रति कृतज्ञता महसूस करते हो जिसने तुम्हें तैरना सिखाया। तुम लहरों का सामना करते हो और बच निकलते हो। तुम इस तरह एक बहादुरी का काम करते हो।

तुम सो रहे हो "आग"! "आग"! खतरे की आवाज से तुम जाग पड़ते हो। तुम अपने बिस्तर से उछल पड़ते हो और धधकती ज्वाला की लाल लपटों को देखते हो। तुम भयभीत नहीं होते। तुम धुओं, चिनगारियों, लपटों से होते हुए भाग निकलते हो। यह साहस है।

कुछ समय पहले मैंने इंग्लैण्ड में एक बाल पाठशाला का भ्रमण किया था। बच्चे वहाँ तीन से सात वर्ष की उम्र के थे। उनमें लड़के-लड़कियाँ दोनों थे और वे सब बुनाई, चित्रकारी, कथा-श्रवण तथा गायन में व्यस्त थे। अध्यापक ने मुझे बताया, "हम लोग अग्नि-चेतावनी का अभ्यास करने जा रहे हैं। निस्सन्देह कहींआग नहीं लगी है परन्तु उन्हें सिखाया गया है कि कैसे चेतावनी का संकेत होते ही तुरन्त उठ कर उन्हें बाहर भागना है।"

उसने अपना बिगुल बजाया। तुरन्त बच्चों ने किताबें, पेंसिल, बुनाई की सलाइयाँ छोड़ दीं और खड़े हो गये। दूसरे संकेत पर वे पंक्तिबद्ध हो कर खुले

मैदान में चले गये। कुछ ही क्षणों में कक्षा खाली हो गई। इन छोटे बच्चों ने आग के खतरे का सामना करना और बहादुर बनना सीख लिया।

किसके लिए तुम तैरे? अपने लिए।

किसके लिए तुम लपटों से बच कर भागे? अपने लिए।

किसके लिए बच्चों ने आग के भय का अवरोध किया? अपने लिए।

उपरोक्त हर उदाहरण में साहस का प्रदर्शन अपने लिए था। क्या यह गलत था? निस्सन्देह नहीं। अपनी जान की बहादुरी से रक्षा करना उचित है। परन्तु एक महानतर साहस भी होता है जो दूसरों की रक्षा के लिए प्रदर्शित किया जाता है।

मैं तुम्हें भवभूति द्वारा रचित माधव की कहानी सुनाऊंगी। वह एक आर्तनाद सुनता है। मन्दिर में प्रवेश कर वह चामुण्डा देवी के गर्भगृह में पहुंचता है। प्रचण्ड देवी के सम्मान में किसी की बलि दी जानेवाली है। यह बेचारी मालती है। उस बालिका को निद्रावस्था में उठा कर ले आया गया है। वह पुजारी और पुजारिन के साथ अकेली है। पुजारी उस पर छुरा उठाता है पर मालती माधव की याद में खो जाती है जिसे वह प्यार करती है।

हे माधव, मेरे हृदय के स्वामी

ओह, क्या मैं मृत्यु के बाद तेरी स्मृति में बनी रहूंगी!

प्रेमपूर्ण स्मृति का लेप मृत्यु के बाद भी व्यक्ति को अमर बना देता है। एक चीत्कार के साथ वीर माधव बलि कक्ष में घुस पड़ता है और पुजारी पर घातक प्रहार करता है। मालती बच जाती है। माधव ने किसके लिए साहस प्रदर्शित किया? क्या उसने अपने लिए संघर्ष किया? हाँ - किन्तु यह उसके साहस का एक मात्र कारण न था। वह दूसरे के लिए संघर्ष करता है। उसने एक आर्तनाद सुनी और जिसने उसके बहादुर हृदय को आन्दोलित कर दिया।

तुमने देखा कि अपने आप की रक्षा के लिए साहस कैसा होता है और दूसरों की सहायता के लिए साहस क्या होता है।

मैं तुम्हें वीर विभीषण की कथा सुनाऊंगी। उसने एक ऐसे खतरे का सामना किया जो मौत के खतरे से भी बड़ा था। उसने एक राजा के क्रोध

का सामना किया और एक बुद्धिमतापूर्ण परामर्श दिया जिसे दूसरे कहने का साहस नहीं कर सकते थे।

लंका का राजा दैत्यराज रावण। उसके दस सिर थे। उसने सीता का हरण किया था और लंका द्वीप में अपने शानदार महल के एक मनोहर बाग में उसे कैद कर रखा था। दुःखी सीता हर रोज विलाप करती और सोचती रहती कि क्या कभी वह पुनः अपने पति राम से मिल पायेगी।

राम को हनुमान से यह पता चला कि सीता वहाँ कैद है। वे सीता को मुक्त करने के लिए वानरों की एक सेना लेकर लंका की ओर चल पड़े।

जब रावण को राम के आगमन की सूचना मिली तब वह भय से कांप उठा।

उसे दो प्रकार की सलाह दी गई। दरबारियों की एक भीड़ ने कहा, "घबराने की कोई बात नहीं है। हे दैत्यराज, देवों और असुरों को आपने जीत लिया है। आप को राम को तथा उसकी बन्दरों की सेना को जीतने में कोई कठिनाई नहीं होगी।"

जब उसके दरबारी चले गये तब उसके भाई विभीषण ने प्रवेश किया। उसने अपने भाई का अभिवादन किया तथा उसके पैरों को चूमा। तब वह उसके सिंहासन की दायीं ओर बैठ कर बोला, "हे मेरे भाई, यदि तुम सुख से रहना चाहते हो और लंका के सुन्दर द्वीप का सिंहासन बनाये रखना चाहते हो तब सुन्दरी सीता को लौटा दो क्योंकि वह किसी और की पत्नी है। तुम राम के पास जाकर क्षमा मांग लो। वे तुम्हें क्षमा कर देंगे। घमण्डी और दुःसाहसी न बनो।"

एक बुद्धिमान दरबारी माल्यवान विभीषण के इस परामर्श को सुन कर बहुत प्रसन्न हुआ। उसने रावण से कहा, "अपने भाई के परामर्श को स्वीकार कर लो, क्योंकि उसने सत्य कहा है।"

रावण उसकी बात सुनकर क्रोधित हो उठा और बोला, "तुम दोनों के मन में कोई षड्यन्त्र है क्योंकि तुम दोनों मेरे शत्रु का पक्ष ले रहे हो।"

उसकी दस सिरों की आँखें क्रोध से ऐसी भयंकर हो गईं कि माल्यवान

डर से भाग खड़ा हुआ। परन्तु विभीषण अपनी आत्मा के शौर्य में डटा रहा। उसने फिर कहा, "राजन्! प्रत्येक व्यक्ति के हृदय में ज्ञान और अज्ञान दोनों होते हैं। जब उसके हृदय में ज्ञान निवास करता है तब जीवन ठीक-ठीक व्यतीत होता है। जब अज्ञान का प्रभाव बढ़ता है तब सब कुछ अशुभ बन जाता है। मुझे लगता है कि आप के हृदय में अज्ञान का वास हो गया है, क्योंकि हे भाई, उनकी बातों पर आप ध्यान देते हैं जो बुरी सलाह देते हैं। वे आप के सच्चे मित्र नहीं हैं।"

वह शान्त हो गया और उसने राजा के पाव चूमे। रावण चीखता हुआ बोला, "तुम भी मेरे शत्रुओं में से हो। अब और अनरगल बातें मत बोलो। ऐसी बातें जंगलों में जाकर वैरागियों से करो, उससे नहीं जो अपने सभी शत्रुओं पर विजय प्राप्त कर चुका है।"

विभीषण दुःखी हो कर दरबार से बाहर चला गया। उसने रावण को स्पष्ट रूप से सच्ची सलाह दी थी और क्योंकि दशानन रावण ने उसकी बात नहीं मानी, इसलिए उसे निराश होकर जाना पड़ा।

विभीषण का कार्य भौतिक साहस का था, क्योंकि वह अपने भाई के आघात से नहीं डरा। परन्तु यह मानसिक साहस का भी कार्य था, क्योंकि वह ऐसी सलाह देने में नहीं डरा जिसे अन्य दरबारी देने का साहस नहीं कर सके। मन के इस साहस को नैतिक साहस कहते हैं।

ऐसा ही साहस था मूसा का, जो इसरायल के नेता थे, जिसने मिस्र के फरोह से दलित यहूदी जनता की स्वाधीनता की मांग की।

ऐसा ही था साहस पैगम्बर मुहम्मद का जिसने अरबवासियों को अपने धार्मिक विचार का उपदेश दिया और जो उनकी मौत की धमकी के बावजूद उनके सामने झुका नहीं।

ऐसा ही था साहस धन्य महान आत्मा सिद्धार्थ का जिसने भारतीयों को एक नये और उदात्त पथ की शिक्षा दी, जो उन शैतानी शक्तियों से भयभीत नहीं हुआ जिन्होंने बोधि वृक्ष के नीचे उसे आक्रान्त कर रखा था।

ऐसा ही था साहस ईसा का जिसने एक दूसरे से प्रेम करने की शिक्षा दी

और जो जेरुसलम के धर्म गुरुओं से भयभीत नहीं हुआ जिन्होंने उसे अपनी शिक्षा का प्रचार करने से रोका और न रोम के राजाओं से डरा जिन्होंने उसे सूली पर चढ़ा दिया।

इस प्रकार हमलोगों ने देखा कि साहस की तीन श्रेणियाँ हैं :

- अपने लिए भौतिक साहस
- साहस अपने सम्बन्धी, मित्र, दुःखी पड़ोसी, संकटग्रस्त मातृभूमि के लिए
- अंत में नैतिक साहस जो हमें अन्यायियों के विरुद्ध खड़ा होने में समर्थ बनाता है और न्याय तथा सत्य की आवाज सुनने के लिए उन्हें बाध्य करता है चाहे वे कितने भी शक्तिशाली क्यों न हों।

***

अल्मोड़ा के राजा ने कुछ आक्रमणकारियों को पीछे खदेड़ने के लिए, जिन्होंने उसके पर्वतीय प्रदेश पर आक्रमण कर दिया था, अपनी नयी सैनिक टुकड़ी में कुछ सैनिकों की भरती की और प्रत्येक को एक अच्छी तलवार प्रदान की।

"आगे बढ़ो!" राजा ने आदेश दिया।

झनकार के साथ तुरन्त लोगों ने म्यान से अपनी तलवारें निकाल लीं और उन्हें भांजते हुए चीत्कार किया।

"यह क्या?" राजा ने पूछा।

"राजन, हम मुकाबले के लिए तैयार रहना चाहते हैं जिससे शत्रु हम पर अचानक टूट न पड़े।"

"अधीर और तुरन्त आवेश में आनेवाले तुम लोग मेरे लिए किसी काम के नहीं हो। तुम सब अपने-अपने घर लौट जाओ।" राजा बोला।

तुम देखोगे कि राजा इस शोरगुल और तलवारों की झंकार से प्रभावित नहीं हुआ। वह जानता था कि सच्ची वीरता में कोलाहल और शोरगुल नहीं होता।

इसके विपरीत, मैं जो कहानी सुनाने जा रही हूँ उसमें तुम देखोगे कि

लोगों ने कितनी शान्ति के साथ समुद्र पर कितने भीषण घातक खतरे का सामना किया।

सन् १९१० में मार्च के अन्त में एक स्कॉटिश जलपोत यात्रियों के साथ ऑस्ट्रेलिया से उत्तमाशा द्वीप जा रहा था। आकाश निरभ्र था और शान्त और नीला था।

अचानक जलपोत आस्ट्रेलिया के पश्चिमी तट से छः मील दूर एक समुद्री चट्टान से जा टकराया।

शीघ्र ही सारा कर्मीदल सक्रिय हो गया। बिगुल बजते ही हर व्यक्ति वेग गति से काम करने लगा। परन्तु यह शेर घबराहट और डर का नहीं था।

एक आदेश की आवाज आयी : "नावों को संभालो!" यात्रियों ने सुरक्षा बेल्ट धारण कर लिये। एक नेत्रहीन व्यक्ति अपने सेवक के साथ डेक से गुजरा। हरेक ने उसे रास्ता दे दिया। वह असहाय था और सभी चाहते थे कि उसे सबसे पहले बचाया जाये। कुछ ही समय के बाद पोत खाली हो गया और शीघ्र ही जलमग्न हो गया।

एक सुरक्षा-नाव पर एक स्त्री गीत गाने लगी। और लहरों के शोर के बावजूद जिनमें यदाकदा उसकी आवाज डूब जाती थी, नाविक गीत का टेक सुन पाते थे जिससे उनकी भुजाओं में नया जोश आ जाता था :

तट की ओर बढ़ो रे मांझी,

तट की ओर बढ़ो।

अन्त में डूबे जलपोत के सभी यात्री तट पर पहुंच गये जिन्हें अच्छे मछुआरों ने काफी मदद की। एक यात्री भी नहीं डूबा। इस प्रकार चार सौ पचास यात्रियों ने शान्त साहस के साथ आत्मरक्षा कर ली।

***

इस प्रकार के शान्तिपूर्ण साहस के बारे में जो बिना प्रदर्शन या सजधज के उपयोगी तथा उदात्त कार्य सम्पन्न कर देता है, कुछ और बताऊंगी।

एक भारतीय गांव के किनारे से होकर जिसमें पांच सौ मकान थे एक गहरी नदी बहती थी। इस गांव के वासी भगवान सिद्धार्थ की शिक्षाओं के बारे

में कुछ नहीं जानते थे। भगवान सिद्धार्थ ने उन्हें अपने उदात्त पथ के बारे में बताने का निश्चय किया। वे नदी के तट पर एक महावृक्ष के नीचे बैठ गये जिसकी शाखाएं नदी के किनारे फैल रही थीं।

तब उन्होंने प्रेम और शुद्धता की अपनी शिक्षा देनी आरम्भ की। उनकी वाणी जल के प्रवाह के साथ मानों चमत्कार के द्वारा ग्रामीणों तक पहुंच गई। फिर भी गांव के लोगों ने उनकी शिक्षा में विश्वास नहीं किया और वे उनके विरुद्ध कानाफूसी करने लगे। केवल उनमें से एक ग्रामीण कुछ और अधिक जानना तथा भगवान सिद्धार्थ के और निकट जाना चाहता था।

नदी पर न कोई पुल था न नाव का प्रबन्ध था। पुरानी कथा के अनुसार वह व्यक्ति जिसमें दृढ़ साहस था, नदी के गहरे पानी में से उस पार जाने लगा। इस प्रकार वह गुरु के पास पहुंच गया, उनका अभिवादन किया, और आनन्द के साथ उनकी वाणी सुनने लगा।

क्या इस व्यक्ति ने सचमुच नदी को पार किया जैसा कि कहानी में वर्णित है? हम लोग नहीं जानते। परन्तु उसने उस पथ पर चलने का साहस किया जो प्रगति की ओर ले जाता है। और गांव के लोगों ने उसके उदाहरण से प्रभावित हो कर बुद्ध की शिक्षाओं पर ध्यान दिया और उनके मन उदात्त विचारों के प्रति उद्घाटित हो गये।

एक ऐसा साहस होता है जिससे तुम नदी पार कर जाते हो और दूसरा तुम्हें सत्य के मार्ग पर चलने में समर्थ बनाता है। परन्तु सत्य के पथ पर प्रवेश करने की अपेक्षा उस पर चलते रहने में अधिक साहस की आवश्यकता होती है। मुर्गी तथा उसके चूजों का दृष्टान्त सुनो। स्वनाम धन्य प्रभु सिद्धार्थ अपने शिष्यों को यथासंभव सर्वोत्तम प्रयास करने की शिक्षा देते थे और यह विश्वास करते थे कि उसका सर्वोत्तम फल मिलेगा। उन्होंने कहा, "जैसे मुर्गी अण्डे देती है और उसे सेती है और कभी इस बात से परेशान नहीं होती कि मेरे चूजे अपने चोचों से कोषों को तोड़ कर बाहर निकल पायेंगे और दिन का प्रकाश देख पायेंगे या नहीं। तुम्हें भी चिन्ता नहीं होनी चाहिये। यदि तुम अपने उदात्त पथ पर दृढ़ता के साथ चलते रहो तब तुम भी प्रकाश में आ जाओगे।"

और यह सच्चा साहस है : पथ पर सीधे चलते रहना, तूफान, अन्धकार, कष्ट का सामना करना और बाधाओं के बावजूद ज्योति की ओर निरन्तर आगे बढ़ते रहना, अध्यवसाय करते रहना।

***

बहुत पहले की बात है। बनारस में ब्रह्मदत्त का राज्य था। दूसरे प्रदेश के एक राजा ने जो उसका शत्रु था, उससे युद्ध करने के लिए एक हाथी को प्रशिक्षित किया। युद्ध की घोषणा हो गई। वह शानदार हाथी अपने स्वामी राजा को बनारस के परकोटों तक ले गया। परकोटे की चोटियों से घेराबन्द नगर के लोगों ने शत्रु की सेना पर खौलते पानी और गुलेलों से पत्थरों की बौछार की। पहले तो हाथी इस भयानक बौछार से पीछे हट गया। परन्तु उसका प्रशिक्षक चिल्लाता हुआ उससे बोला, "हे हाथी, तुम वीर हो, वीर के समान आचरण करो और नगर के फाटक को धराशायी कर दो!" इन बातों से उत्साहित हो कर हाथी ने मुख्य द्वार पर आक्रमण किया और उसके कपाटों को धराशायी कर दिया। इस प्रकार साहस बाधाओं और कठिनाइयों को ध्वस्त कर विजय का द्वार खोल देता है। और किस प्रकार एक उत्साहवर्धक वाणी मनुष्य और पशु को एक समान सहायता प्रदान कर सकती है।

***

एक अच्छी मुस्लिम पुस्तक की अबू सईद की कहानी में जो साहसी दिलवाले एक शायर थे, इसका एक उदाहरण मिलता है। उसके कुछ दोस्त एक दिन यह सुन कर कि वे बीमार हैं उनकी खैरियत पूछने आये। अबू सईद के बेटे ने मुस्कान के साथ उन सब का स्वागत किया, क्योंकि अबू सईद अब बेहतर महसूस कर रहे थे। वे सब रोगी के कमरे में आये और यह देख कर हैरान रह गये कि शायर अपने स्वाभाविक विनोदी हावभाव के साथ बात कर रहे हैं। अबू सईद ने अपने अतिथियों के लिए नाश्ते-पानी का प्रबन्ध किया और कमरे में सुगन्ध के लिए अगरबत्ती जलाने का आदेश दिया।

मेहमानों की खातिरदारी के बाद वे उठ बैठे और अपनी एक कविता

सुनायी :

शोक में निराश न होना क्योंकि खुशी की घड़ी आयेगी और इसे ले जायेगी, तपती लू बहेगी फिर भी शीतल वायु में बदल जायेगी,
काले बादल छा सकते हैं किन्तु ये चले जाते हैं और बाढ़ नहीं आती,
आग लग सकती है फिर भी बुझ सकती है सन्दूकों को छोड़ कर अछूते;
दर्द आता है पर जाता भी है,
इसलिए जब तकलीफ आये तब धीरज रखो क्योंकि
वक्त चमत्कारों का जन्मदाता है
और खुदा की शान्ति से बहुत-से आशीर्वादों के आने की आशा कर।

आशा भरी सुन्दर कविता को सुन कर वे प्रसन्नता और शक्ति के साथ घर वापस लौट गये। इस प्रकार बीमार आदमी ने अच्छी तन्दुरुस्ती से अपने दोस्तों की मदद की।

जो व्यक्ति साहसी है वह दूसरों को साहस प्रदान कर सकता है जिस प्रकार एक मोमबत्ती की ज्वाला दूसरी मोमबत्ती को प्रज्वलित कर सकती है। बहादुर लड़के-लड़कियाँ जो इस कहानी को पढ़ते हैं यह शिक्षा पाते हैं कि दूसरों को कैसे प्रोत्साहित किया जाता है।

*CWM Vol. 2, p.179* —श्रीमाँ

पूर्ण योग

यह योग एक आध्यात्मिक युद्ध है। इसका प्रयास मात्र सभी प्रकार की विरोधी शक्तियों को जगा देता है तथा व्यक्ति को कठिनाइयों, दुःख और कष्टों तथा हर प्रकार के विरोधों का शान्त और अटल भाव से सामना करने के लिए तैयार रहना होगा। ये कठिनाइयाँ अग्नि परीक्षाएं होती हैं और व्यक्ति यदि सही मनोवृत्ति से उनका सामना कर ले तब व्यक्ति अधिक सबल तथा आध्यात्मिक दृष्टि से अधिक शुद्ध एवं महान बन कर निकलता है।

श्रीअरविन्द

# 9

# साधुता (अच्छाई )

## साधुता या अच्छाई की शक्ति

**अच्छाई**

*देखने में विनम्र, कोई*
*दिखावा नहीं करती,*
*लेकिन हमेशा उपयोगी*
*होने के लिए तत्पर*
*रहती है*

*(श्रीमाँ द्वारा दिया गया पुष्प का आध्यात्मिक अर्थ तथा व्याख्या)*

*Botanical name:*
Lobularia maritima

सहज साधुता की अरुणिमा एक पुष्प के सम
परमप्रिय है प्रकृति की, देते हैं महत्व उसके सब प्राणी,
और जिसकी देह के तने पर इसकी सुगन्धमय शक्ति
होती है पुष्पित, सभी हिंस्र चीजों को कर सकती है परिष्कृत।

उसके लिए प्रज्वलित अग्नि बन जाती है जल पीत औ' शीत,
उसके लिए आकाश को भयभीत करता सागर
जाता है डूब शान्त नभोनील के सरोवर में,
उसके लिए भूखा शेर बन जाता है हिरनी।

और संगीत से अशमित दारुण नाग को
वह देता है बांध अपनी भृकुटियों पर पुष्पों की माला में,
उसके लिए विष बन जाता है अमृत;
अलंध्य शिखर बन जाते हैं सरल ढलान,
निष्ठुर अशुभ से पनपते हैं सशक्त वरदान।

*SABCL Vol. 8, p.204*

- श्रीअरविन्द

परिश्रमी तपस्वी, जो उत्कट श्वास के साथ भरता है दंभ
सन्तता का – है व्यर्थ तेरा विश्वास, सद्कर्म की करो पूजा,
देवी सरल, निष्कपट, जो देती है फल तेरी अभीप्सा का,
उसका स्पर्श कामुक को बना सकता है सन्त,
अप्रतिम रूप से उसका शान्त जादू मूर्खों को मुनियों में
कर देता है परिवर्तित।
और गुह्य रहस्य हो जाते हैं उद्घाटित,
आंखों से या मस्तिष्क से जो हैं अज्ञात।
भीषण शत्रु बन जाते हैं मित्र और विष अशुभ
क्षण में उसके संकल्प से बन जाते हैं अमृत।

*SABCL Vol. 8, p.200* – श्रीअरविन्द

## अच्छा और सुन्दर

अपने एक हाल के लेख में रवीन्द्रनाथ ठाकुर कहते हैं कि अच्छाई तथा सुन्दरता इतनी घनिष्ठता से सहसम्बन्धित हैं कि वे हमेशा एक साथ पाये जाते हैं। वे कहते हैं, "अच्छा अनिवार्य रूप से सुन्दर होता है तथा सौन्दर्य अच्छे का चित्र होता है। अच्छाई सौन्दर्य के पीछे सच्चाई है।"

मैं नहीं कह सकता कि मैं इन सूक्तिपूर्ण वाक्यों को समझ पाता हूँ। अच्छा से तात्पर्य क्या है? सौन्दर्य से तात्पर्य क्या है? दिव्य रूप से अच्छा निस्सन्देह सुन्दर होता है, क्योंकि उच्चतर लोक में अच्छा और सुन्दर तथा अन्य सब जो मूल में दिव्य हैं मिल जाते हैं, एक हो जाते हैं, सुसंगत बन जाते हैं। परन्तु मनुष्य जिसे अच्छा कहते हैं वह प्रायः कुरूप अथवा नीरस अथवा अनाकर्षक होता है। मानवीय सौन्दर्य हमेशा अच्छा का चित्रण नहीं होता, यह कभी-कभी बुराई का नकाब होता है। उस नकाब के पीछे की वास्तविकता हमेशा अच्छाई नहीं होती। ये चीजें स्पष्ट हैं, किन्तु सम्भवतः रवीन्द्रनाथ का तात्पर्य अच्छा और सुन्दर के उच्चतर पक्षों अथवा उनके सार तत्वों से रहा होगा।

*SABCL Vol. 27, p.703* – श्रीअरविन्द

## मात्र अच्छाई से परे

पूर्ण योग में जो पूर्ण अर्पण करना पड़ता है उसमें अदिव्य के प्रति संपूर्ण अनासक्ति तथा परमात्मा के लिए सम्पूर्ण प्रेम और गुरु के प्रति सम्पूर्ण सेवा-भाव की आवश्यकता को व्यक्ति अच्छी तरह अनुभव करता है। प्रायः जो नहीं समझा जाता वह है संसार में रहते हुए क्रिया की विधि जहाँ परमोच्च सत्ता की अभिव्यक्ति कार्यान्वित होनी है और मानवों के साथ व्यवहार करने का तरीका जिनके बीच भगवान ने हमलोगों को रखा है। दो पराकाष्ठाएं हैं जिनमें हमलोगों के जा गिरने की सम्भावना होती है। एक वह स्थिति है जिसमें अच्छाई का अभ्यास मात्र ही अध्यात्म मान लिया जाता है। इसमें कोई सन्देह नहीं कि व्यक्ति की आत्म-केन्द्रितता को शिथिल करनेवाली प्रत्येक गति अध्यात्म के लिए एक सहायता है। किन्तु अध्यात्म तब तक पूर्ण रूप से स्थापित नहीं होता जब तक व्यक्ति का केन्द्र अहं सच्ची आत्मा तथा वैश्व पुरुष द्वारा प्रतिस्थापित नहीं हो जाता। अन्यथा जो भी घटित होता है वह अहं का ही सूक्ष्म रूप होता है, संकेन्द्रण के स्थान पर वितरण - एक ऐसी स्थिति आ जाती है जिसमें कभी-कभी सुराग लगाना कठिन होता है और इसीलिए उससे आगे बढ़ना अधिक कठिन हो जाता है, आत्म-महिमान्वित आत्मसन्तोष की संभावना अधिक हो जाती है तथा सच्चे प्रकाश में मुक्ति अवरुद्ध हो जाती है। भगवान की एक सतत स्मृति, परमोच्च को सीधे जीवन का समर्पण, मात्र अच्छाई से परे एक सचेतन प्रयोजन तथा उत्साह, सभी मानवीय सम्बन्धों में परमोच्च ज्योति के प्रति उसके अपने संकल्प को अभिव्यक्त करने की अपरिहार्य पुकार :यही है क्रिया में आध्यात्मिकता।

*The Vision and Work of Sri Aurobindo, p. 153* — अमल किरण

पुराणों के देवगण निर्दय होते हैं जो केवल शक्ति का सम्मान करते हैं और उनमें सच्चा प्रेम, दानशीलता अथवा गहन अच्छाई जैसी कोई चीजें नहीं होतीं जो सब भगवान ने मानव चेतना में प्रतिष्ठित कर दी हैं - और जो सभी बाहरी

दोषों के लिए चैत्य भाव के रूप में क्षतिपूर्ति का काम करती हैं। स्वयं उनमें ऐसा कुछ नहीं होता। उनमें चैत्य सत्ता नहीं रहती। पौराणिक देवों में चैत्य सत्ता नहीं है इसलिए वे अपनी शक्ति के अनुसार क्रिया करते हैं। वे केवल तभी नियन्त्रित होते हैं जब उनकी शक्ति सर्वशक्तिमान नहीं रहती, बस।

*Conversation with a Disciple,* Vol. 1, p. 216 —श्रीमाँ

दूसरा पग है सभी वस्तुओं के पीछे छिपी और उनके अस्तित्व का कारण सर्वोच्च अच्छाई तथा सौन्दर्य के प्रति सकारात्मक रूप से सचेतन बनना। एक बार उसे तुमने देख लिया है तब उसे मुखौटे तथा विकृति के पीछे उसे देख सकते हो - यहाँ तक कि कुरूपता, क्रूरता, दुष्टता उस कुछ चीज के छद्मावरण हैं जो मूल रूप से अच्छा या सुन्दर, ज्योतिर्मय, शुद्ध है।

इसके साथ आता है सच्चा सहयोग। क्योंकि जब तुम्हारे अन्दर यह अन्तर्दृष्टि, यह जागरूकता होती है, जब तुम इस चेतना में रहते हो तब तुम्हारे अन्दर तत् को धरती पर अभिव्यक्ति में खींच कर लाने की और उसे उसके साथ सम्पर्क में रखने की, जो तात्कालिक रूप से विकृत और छद्मावृत हो जाती है – शक्ति भी आती है; इस प्रकार विकृति तथा छद्मावरण क्रमशः पीछे के सत्य के प्रभाव के द्वारा रूपान्तरित हो जाते हैं।

*Conversation with a Disciple,* Vol. 2, p. 20 —श्रीमाँ

और अब शरीर जानता है (आरम्भ में यह नहीं जानता था, इसने सोचा कि यह बाहर से आक्रमण होगा, विरोधी शक्तियाँ; और इसकी व्याख्या हमेशा इस तरह की जा सकती है, एक प्रकार से यह सच था, किन्तु यह वास्तविक सत्य नहीं था, गहनतम सत्य नहीं था), अब शरीर जानता है कि यह सब कहाँ से आता है, और यह कितना चमत्कारिक था! प्रज्ञा का चमत्कार ... यह हर वस्तु को अपने स्थान पर रख देता है, यह तुम्हें अनुभव करा देता है कि विरोधी शक्तियों का वह सब खेल वस्तुओं को देखने का एक ढंग है (एक आवश्यक ढंग निश्चित समय के लिए – 'आवश्यक' से मेरा तात्पर्य

है व्यावहारिक) परन्तु फिर भी यह भ्रान्ति है। और अब, शरीर स्वयं यह जानता है। और यह केवल सद्भावना से ही नहीं बल्कि एक अपरिमित कृतज्ञता से भी परिपूर्ण है - यह हमेशा आश्चर्य करता है (यह इसकी प्रथम गति है), "क्या मेरे पास शक्ति होगी ?" – "यह तुम्हारी शक्ति नहीं है।" उस अशक्तता का बोध भी अपरिमित कृतज्ञता के आनन्द में विलीन हो जाता है - चीज इतनी अच्छाई से, इतनी सूक्ष्म दृष्टि से, इतनी गंभीरता से, यथासंभव सम्पोषण की इतनी सावधानी से, एक क्रमिक सन्तुलन के साथ की जाती है।

*Conversation with a Disciple,* Vol. 4, (July 31, 1963) —श्रीमाँ

यह इस प्रकार है : शरीर को पूर्णतया विश्वास है कि केवल एक ही संकल्प है - एक चेतना, एक संकल्प। परिणामतः जो कुछ घटित होता है वह उसी चेतना और उसी संकल्प का भाग है। यह इसी प्रकार है, तुम समझते हो न! इसलिए यह क्रोध नहीं कर सकता। इसकी एक सहज प्रवृति है : अभीप्सा को और अधिक तीव्र होने दो, समर्पण को और अधिक सम्पूर्ण होने दो, श्रद्धा को और अधिक समेकित। यह इस प्रकार सूत्रबद्ध हो जाता है : 'तत् - तत् जो हर चीज है और एकम् है – वह, सभी प्रतीतियों के बावजूद, सर्वोच्च अच्छाई, सर्वोच्च सौन्दर्य, सर्वोच्च सामंजस्य है ... हर चीज का गन्तव्य वही तत् है। बस! और हम सब भी उसी तत् की ओर गमन करते हैं।' वह शरीर का 'दर्शन' है। किन्तु सत्ता के अन्य भागों के समान नहीं : बिलकुल सहज, तथा एक प्रकार से निर्विवाद रूप से।

*Conversation with a Disciple,* Vol. 9, p.260 -श्रीमाँ

यह चेतना सचमुच असाधारण है, और एक ऐसे विनोदपूर्ण बोध के साथ, जानते हो ... यह इस शरीर को शिक्षित कर रही है, सभी प्रतिक धारणाओं को प्रथमतः साफ करती हुई। शरीर सहज भाव से एक प्रकार की आराधना में रहता है और अचानक इस चेतना ने इसे दो भयानक विषदन्तों के साथ एक विशाल सर्प दिखाया जो इस प्रकार का था (श्रीमाँ के सामने सीधा खड़ा होने

का संकेत।) साथ ही इसने व्याख्या भी की : "विषदन्त... यह सर्वोच्च अच्छाई है जिसने उन्हें आविष्कृत किया..." तुम जानते हो, यह ऐसा ही था ... यह अप्रतिरोध्य है। और यह बेचारा शरीर वैसा बना रहा, कुछ हक्काबक्का-सा... इसने अनुभव किया कि इसने कभी ऐसा सोचा भी न था। इसने वस्तुस्थिति को ऐसी ही समझा जैसी वह है, जैसी यह दुनिया है, इसने उसके विषय में ऐसा कभी नहीं सोचा : इसका अस्तित्व कैसे सम्भव हो सकता है? यह कैसे हो सकता है?

*Conversation with a Disciple, 10, p. 158* —श्रीमाँ

## अच्छाई

शरीर की सच्ची प्रकृति के प्रति सतत सावधान रहना, बुरी चीज की खोज नहीं करना, अच्छी चीज की अध्यवसाय के साथ खोज करना - यह सब सच्ची बुद्दिमानी है। इस प्रकार व्यक्ति के सभी दोष दूर हो जाते हैं।

जिसे व्यक्ति में श्रद्धा और सज्जनता है, महिमा और सम्पदा है उसका सर्वत्र सम्मान किया जाता है।

अच्छे व्यक्ति हिमालय के हिमशिखरों के समान दूर तर चमकते हैं। जबकि दुष्ट व्यक्ति रात्रि में छोड़े गये वीर के समान क्षण भर के लिए दिखाई देते हैं।

*CWM Vol. 3, p. 274 (14 July 1958)* —श्रीमाँ

## बुराई

अच्छे की ओर शीघ्रता करो, समस्त बुरे विचारों को पीछे छोड़ दो, क्योंकि उत्साह के बिना अच्छा करने का अर्थ है ऐसे विचार का पोषण जो बुरी चीजों में आनन्द अनुभव करता है।

यदि कोई व्यक्ति गलत काम करता है तब उसे उस पर डटे रहना और उसे करने में आनन्द लेना नहीं चाहिये, क्योंकि बुराइयों का ढेर कष्टों का ही ढेर है।

यदि कोई व्यक्ति अच्छा काम करता है तब उसे दृढ़तापूर्वक आनन्द के साथ करते रहना चाहिये। अच्छाइयों का ढेर आनन्द का ही ढेर है।

जब तक दुष्ट व्यक्ति की दुष्टता परिपक्व नहीं होती तब तक वह सन्तोष अनुभव कर सकता है। किन्तु जब यह परिपक्व हो जाती है तब दुष्ट व्यक्ति दुःख अनुभव करने लगता है।

जब तक अच्छे आदमी का अच्छा काम परिपक्व नहीं हो जाता तब तक वह दुःख अनुभव कर सकता है। किन्तु जब यह परिपक्व हो जाता है तब अच्छा आदमी आनन्द अनुभव करने लगता है।

तुम विश्वास करते हो कि तुम कितने अच्छे, कितने दयालु हो, सुव्यवस्थित हो और हमेशा अच्छी भावनाओं से भरपूर रहते हो। तुम किसी की हानि नहीं करना चाहते, तुम सब का भला चाहते हो - यह सब तुम अपने आप से बड़े आत्मसन्तोष के साथ कहते हो। परन्तु यदि तुम निष्कपटता के साथ अपना निरीक्षण करो तब तुम अपने अन्दर कभी-कभी ऐसे विचारों को देखोगे जो भयानक होते हैं और तुम्हें इनकी जानकारी नहीं होती।

तुम अपनी आत्मश्लाघा में यह समझते हो कि तुम्हारे अन्दर सद्भावना ही सद्भावना और नेक इरादे हैं और तुम भले काम के अलावा कुछ गलत काम नहीं करते - यह ठीक है जब तक तुम सचेतन हो और आत्मसंयम से काम करते हो, किन्तु एक क्षण भी तुम असावधान हो जाते हो तब तुम्हारे अन्दर सब तरह की चीजें होने लगती हैं जिनके प्रति तुम बिलकुल सचेतन नहीं रहते और वे बहुत भद्दी चीजें होती हैं।

*CWM Vol. 3, p. 229* —श्रीमाँ

## 8 अप्रैल 1914

हे स्वामी, मेरा विचार शान्त और हृदय आत्मस्थित है; मैं एक गहरी भक्ति तथा एक असीम विश्वास के साथ तेरी ओर मुड़ती हूँ : मैं जानती हूँ कि तेरा प्रेम सर्वशक्तिमान है और यह कि तेरा न्याय धरती पर राज्य करेगा; मैं जानती

हूँ कि वह मुहूर्त निकट है जब अन्तिम आवरण विदीर्ण हो जायेगा तथा सब अधर्म का स्थान शान्ति तथा सामंजस्यपूर्ण प्रयास का युग ले लेगा।

हे प्रभु, अपने अन्दर नीरव विचार तथा शान्त हृदय के साथ मैं तेरे पास आयी हूँ और मेरी सम्पूर्ण सत्ता तेरी दिव्य उपस्थिति से परिपूर्ण है ; स्वीकार कर कि मैं सभी वस्तुओं में केवल तुझे देख सकूं तथा सभी तेरी दिव्य ज्योति से देदीप्यमान हो जायें। ओह, समस्त घृणा शान्त हो जाये, समस्त विद्वेष मिट जाये, समस्त भय दूर हो जाये, समस्त सन्देह नष्ट हो जाये, समस्त दुर्भाव विजित हो जाये और इस नगर में, इस देश में, इस धरती पर सभी हृदय अपने अन्दर उस दिव्य प्रेम को जो समस्त रूपान्तरण का स्रोत है - स्पन्दित होते अनुभव करें।

हे स्वामी, कितनी उत्कटता से मैं तेरे प्रेम को पुकारती और याचना करती हूँ। स्वीकार कर कि मेरी अभीप्सा इतनी तीव्र हो कि सर्वत्र वैसी ही अभीप्सा जगा दे : औह, अच्छाई या साधुता, न्याय तथा शान्ति परम प्रभुओं के समान राज्य करे, अज्ञानमय अहं पर विजय प्राप्त हो, अन्धकार तेरी शुद्ध ज्योति द्वारा अचानक ज्योतिर्मय हो जाये, अन्धे देखने लगें, बधिर सुनने लग जायें, तेरा विधान हर स्थान पर उद्घोषित हो तथा एक सतत प्रगतिशील एकत्व में, एक अधिक सतत पूर्ण सामंजस्य में, सब, एकल सत्ता के समान अपने को तेरे साथ तादात्म्य के लिए तथा धरती पर तेरी अभिव्यक्ति के लिए तेरी ओर अपनी भुजाएं फैला दें।

हे प्रभु, अन्तर में शान्त विचार तथा सूर्यालोक से प्रदीप्त हृदय के साथ मैं बिना कुछ आरक्षित किये तुझे आत्मसमर्पण करती हूँ और 'स्व' तेरे अन्दर विलीन हो जाता है।

*Prayers and Meditations, p. 121* —श्रीमाँ

## अच्छाई

मैंने बहुत बार लोगों को यह कहते सुना है: "ओह! अब जब मैं अच्छा बनने की कोशिश करता हूं तो ऐसा लगता है कि सब मेरे साथ दुष्टतापूर्ण व्यवहार करते हैं!" लेकिन यह खास तुम्हें यह सिखाने के लिए होता है कि स्वार्थ-भरे उद्देश्य के साथ अच्छा नहीं बनना चाहिये, इसलिए भी अच्छा नहीं बनना चाहिये कि दूसरे तुम्हारे साथ अच्छा व्यवहार करें — अच्छा बनने के लिए अच्छा बनना चाहिये।

हमेशा एक ही पाठ सीखना होता है: जितना अच्छा कर सकते हो करते चलो, जितना कर सको, उससे अधिक अच्छा करो; लेकिन परिणाम की आशा के बिना, परिणाम के बारे में सोचे बिना। यह मनोवृत्ति, अपने अच्छे कार्य के लिए पुरस्कार की आशा करना—अच्छा इसलिए बनना कि हम सोचते हैं कि उससे जीवन अधिक सरल होगा —अच्छे कार्य के मूल्य को घटा देता है।

अच्छाई के प्रेम के कारण अच्छा बनना चाहिये, ईमानदारी के प्रेम के कारण ईमानदार होना चाहिये, पवित्रता के प्रेम के कारण पवित्र होना चाहिये और निःस्वार्थता से प्रेम के कारण निःस्वार्थ होना चाहिये; तब तुम राह पर आगे बढ़ोगे, यह बात निश्चित है।

*CWM Vol. 3, p. 265* —श्रीमाँ

इस योग को, रूपान्तर के इस योग को, जो सभी चीजों में सबसे अधिक दुःसाध्य है, केवल तभी करो जब तुम यह अनुभव करो कि तुम यहां इसीलिए आये हो (यहां से मेरा मतलब है पृथ्वी पर) और इसके सिवाय तुम्हारा कोई काम नहीं है, कि तुम्हारे अस्तित्व का यही एकमात्र कारण है—चाहे इसके लिए तुम्हें बहुत अधिक परिश्रम करना पड़े, कष्ट उठाने पड़ें, संघर्ष करने पड़ें, उसका कोई महत्त्व नहीं—"मैं यही चाहता हूं, और कुछ नहीं"—तब और बात है। वरना मैं कहूंगी: "खुश रहो और नेक बनो, केवल इसी की

मैं तुमसे मांग करती हूं। नेक होने का अर्थ समझदार होने से है, यह जानना कि जिन अवस्थाओं में तुम पले वे असाधारण हैं, और साधारण जीवन से अधिक ऊंचा, अधिक श्रेष्ठ, अधिक सच्चा जीवन जीने की कोशिश करो, ताकि इसके द्वारा इस चेतना का, इस प्रकाश का और इसकी नेकी का कुछ हिस्सा धरती पर अभिव्यक्त हो सके। यह बहुत अच्छा होगा।"

*CWM Vol. 07, p. 193* —श्रीमाँ

मुंह में मिठाई की अपेक्षा अच्छा कार्य हृदय के लिए ज्यादा मीठा होता है। जो दिन अच्छा काम किये बिना बीतता है वह बिना आत्मा का दिन होता है। तुम्हें अपने हृदय में निरन्तर सद्भावना और प्रेम रखना चाहिये और उन्हें सभी के ऊपर शान्ति और समता के साथ प्रवाहित होने देना चाहिये।

*CWM Vol. 15, p. 297* —श्रीमाँ

भगवान् से प्रेम करने और धरती पर 'उनकी' सेवा करने का सबसे अच्छा तरीका है अथक, स्पष्टदर्शी और व्यापक शुभ-चिन्ता जो सभी व्यक्तिगत प्रतिक्रियाओं से मुक्त हो।

*CWM Vol. 14, p. 190* —श्रीमाँ

***

*प्राण ठीक–ठाक रह सकता है जब सब चीजें मजे से हो रही हों किन्तु कठिनाइयों के बढ़जाने पर यह निष्क्रिय बन जाता है। ऐसा भी होता है जब प्राणिक अहंकार को कुछ लालच दे दिया जाये तब यह पुनः उत्साहित और सक्रिय बन जाता है।*

*श्रीअरविन्द*

# १०
# उदारता

**उदारता**
*बिना किसी मोल-तोल के अपने-आपको निरन्तर देती ही रहती है*
*(श्रीमाँ द्वारा दिया गया पुष्प का आध्यात्मिक अर्थ तथा व्याख्या)*
*Botanical name:*
Impatiens balsamina

उदारता हृदय की विशालता की अभिव्यक्ति है।

उदार होना प्रत्येक के प्रति न केवल भौतिक रूप से बल्कि हृदय और मन से भी परोपकारी बनना है। इसका अर्थ है सबके प्रति सदा सद्‌भाव रखना। मन में भी किसी व्यक्ति या किसी चीज के प्रति कोई अशुभ विचार नहीं होना चाहिये।

उदार हृदयवाले की पहचान है दूसरों की प्रसन्नता और आनन्द में हमेशा प्रसन्न तथा आनन्दित रहना तथा सबके साथ सुसंगति में रहना और दयालुता के साथ उनके पास जाना। यह मनोवृति चेतना को विस्तारित करने में तथा भगवान के प्रभाव के प्रति हृदय व मन को उद्‌घाटित करने में बहुत सहायक होती है और इस प्रकार तुम हर चीज से हर्ष और प्रसन्नता प्राप्त करते हो।

इस प्रकार उदारता अधिकांश कठिनाइयों को समाप्त कर सकती है।

*Mother you said so by Huta p 22-23* — श्रीमाँ

मैं यहाँ भौतिक उदारता के बारे में नहीं बोलूंगी जो स्वाभाविक ही दूसरों को अपनी कुछ चीजें देने से सम्बन्धित होती है। परन्तु यह सद्‌गुण भी बहुत व्यापक नहीं है, क्योंकि जैसे ही व्यक्ति धनवान बन जाता है तब वह अधिक प्रायः ही अपने धन को दान में देने की अपेक्षा अपने पास रखना चाहता है। व्यक्ति के पास जितना अधिक धन होता उतना ही कम वह उदार होता है।

मैं नैतिक उदारता के विषय में बोलना चाहती हूँ। उदाहरण के लिए, जब कोई साथी सफल हो जाता है तब प्रसन्नता अनुभव करना। एक साहसिक कार्य में, एक निःस्वार्थ कार्य में, एक उत्कृष्ट त्याग में एक सौन्दर्य है जो आनन्द देता है। ऐसा कहा जा सकता है कि नैतिक उदारता दूसरों की सच्ची सामर्थ्य और श्रेष्ठता को पहचानने की योग्यता में निहित है।

*CWM Vol. 4, p.30* —श्रीमाँ

जब तुम्हारे अन्दर तुम्हारी गतिविधियों में यह उदारता नहीं रहती तब तुम बहुत कम ग्रहण करते हो। और यह अन्य कारणों में से एक कारण है, मुख्य कारणों में से एक कि क्यों भौतिक प्रगति रुक जाती है।

CWM Vol. 5, p.208 —श्रीमाँ

विशालहृदयता तथा उदारता आत्मा के वायवीय आकाश हैं; उनके बिना व्यक्ति एक कालकोठरी में एक कीट पर दृष्टि रखता है।

दूसरों की संतुष्टि में अपनी सन्तुष्टि प्राप्त करना उदारता है।

*CWM Vol. 10, p. 282* —श्रीमाँ

जिस व्यक्ति ने एक सचमुच परिष्कृत रुचि विकसित कर ली है वह इस परिष्कृति के कारण अशिष्ट, क्रूर या अश्लील ढंग से व्यवहार करने में असमर्थ महसूस करेगा। यह परिष्कार, यदि वह निष्कपट है तब उसकी सत्ता में एक विशालहृदयता तथा उदारता लाता है जो सहज भाव से उसके व्यवहार में अभिव्यक्त होगा तथा अनेक निम्न तथा विकृत गतिविधियों से उसकी रक्षा करेगा।

*CWM Vol. 12, p. 21* —श्रीमाँ

नेताओं को सदा दृष्टान्त उपस्थित करना होगा, मार्गदर्शकों को सदा उन सद्‌गुणों को अपने आचरण में लाना होगा जिनकी मांग वे उनसे करते हैं जो उनकी देखरेख में हैं; उन्हें सद्‌भावपूर्ण, धीर, सहनशील, सहानुभूति से परिपूर्ण, स्नेहिल तथा मित्रभावापन्न बनना होगा – अहंकार भाव से, स्वार्थ भाव से, मित्र-मण्डली बनाने के लिए नहीं – बल्कि उदारतापूर्वक दूसरों के दुःख-दर्द को समझने और मदद करने में समर्थ बनने के लिए।

*CWM Vol. 12, p. 355* —श्रीमाँ

चैत्य उदारता देने के आनन्द के लिए देती है।

*CWM Vol. 14, p. 328* —श्रीमाँ

प्राणिक उदारता अपने आप को अबाधित रूप से देती है।

*CWM Vol. 14, p. 354* —श्रीमाँ

उदारता अपने आप को निरन्तर बिना मोलभाव के देती है।

*CWM Vol. 15, p. 50* —श्रीमाँ

## परीक्षकों का दल

पूर्ण योग में परीक्षाओं की एक अटूट शृंखला है जिसे व्यक्ति को पूर्व सूचना दिये गये बिना उत्तीर्ण होना पड़ता है। इससे तुम्हें हमेशा सतर्क और सावधान रहना आवश्यक हो जाता है।

ये परीक्षाएं तीन परीक्षकों द्वारा ली जाती हैं। प्रत्यक्षतः वे एक दूसरे से सम्बन्ध नहीं रखते, उनकी प्रक्रियाएं भी बहुत विभिन्न होती हैं। कभी-कभी वे इतने परस्पर-विरोधी होते हैं कि वे एक ही लक्ष्य की ओर जाते प्रतीत नहीं होते, फिर भी, वे एक-दूसरे के पूरक हैं। वे एक ही गन्तव्य के लिए सहयोग देते हैं और एक पूर्ण परिणाम के लिए अपरिहार्य हैं।

ये तीन प्रकार की परीक्षाएं ली जाती हैं प्रकृति की शक्तियों के द्वारा, आध्यात्मिक तथा दिव्य शक्तियों के द्वारा तथा विरोधी शक्तियों के द्वारा। अन्तिम शक्तियाँ अपने स्वरूप में सर्वाधिक भ्रामक होती हैं और अचानक उनका सामना न करना पड़े इसलिए व्यक्ति को निरन्तर सावधानी, निष्कपटता या सत्यनिष्ठा तथा विनम्रता के भाव में रहना चाहिये।

सर्वथा साधारण परिस्थितियाँ, दैनिक जीवन की सामान्य घटनाएं, देखने में सर्वथा नगण्य व्यक्ति और वस्तुएं – ये सब तीन प्रकार की परीक्षाओं में से किसी न किसी से सम्बन्ध रखती हैं। परीक्षाओं के इस विशाल तथा जटिल संगठन में जीवन में प्रायः सबसे महत्वपूर्ण समझी जानेवाली घटनाएं सबसे आसानी से उत्तीर्ण होनेवाली परीक्षाएं हैं, क्योंकि तुम चौकस और तैयार रहते हो।

तुम मार्ग के छोटे-छोटे रोड़ों से अधिक आसानी से ठोकर खा जाते हो क्योंकि तुम्हारा ध्यान उनकी ओर नहीं जाता।

सहनशीलता तथा नम्यता, प्रसन्नता तथा निर्भयता जैसे सद्गुणों की भौतिक प्रकृति की परीक्षाओं के लिए विशेष रूप से आवश्यकता पड़ती है।

अभीप्सा, विश्वास, आदर्शवाद, उत्साह तथा आत्मदान में उदारता की आध्यात्मिक परीक्षाओं के लिए आवश्यकता पड़ती है।

सतर्कता, निष्कपटता तथा विनम्रता की आवश्यकता विरोधी शक्तियों की परीक्षाओं के लिए पड़ती है।...

*CWM Vol. 14, p.42 (November 12, 1957)* – श्रीमाँ

हर बार, जब भी तुम प्रगति करते हो, तुम्हें एक परीक्षा उत्तीर्ण करनी पड़ती हैं। –श्रीमाँ

## परिवर्तन

संशोधन तथा विलोपन दोनों सम्भव हैं, किन्तु दोनों अवस्थाओं में प्रकृति का, चरित्र का रूपान्तरण, यद्यपि विभिन्न मात्राओं में, आवश्यक होता है। जो भूल

की गई है पहले अपने आप में उसे परिवर्तित करना होगा। तभी व्यक्ति अपनी क्रिया के परिणाम को परिवर्तित करने की आशा कर सकता है।

11 जनवरी 1951 — श्रीमाँ

जब लोग सचमुच अपनी चेतना को पहले बदलना चाहें तभी उनकी क्रियाएं भी बदली जा सकती हैं।

रूपान्तरित करो ... घृणा को सामंजस्य में, द्वेष को उदारता में, अज्ञान को ज्ञान में, अन्धकार को प्रकाश में, मिथ्यात्व को सत्य में, दुष्टता को साधुता में, युद्ध को शान्ति में, भय को निर्भयता में, अनिश्चय को निश्चय में, सन्देह को श्रद्धा में, अस्तव्यस्तता को सुव्यवस्था में, पराजय को विजय में।

*CWM Vol. 15, p. 223 (9 October 1951)* —श्रीमाँ

## विचार एवं सूत्र

### कर्म

२२४ - यदि मैं राम नहीं बन सकता तब मैं रावण बन जाता; क्योंकि वह विष्णु का काला पक्ष है।

इसका अर्थ है कि बल के बिना मधुरता तथा शक्ति के बिना साधुता अपूर्ण हैं और पूर्ण रूप से वे भगवानको व्यक्त नहीं कर सकते।

मैं, श्रीअरविन्द ने जिस प्रकार का बिम्ब प्रयुक्त किया है, उसके आधार पर कह सकती हूँ कि रूपान्तरित असुर की दानशीलता और उदारता निश्चित रूप से एक निर्दोष देवदूत की परोपकारिता से कहीं अधिक प्रभावकारी है।

*CWM Vol. 10, p. 286* — श्रीमाँ

दूसरों की सन्तुष्टि में अपनी सन्तुष्टि देखना उदारता है।

*CWM Vol. 10, p. 281* — श्रीमाँ

जब तुम्हारी गतिविधियों में उदारता नहीं रहती, तब तुम बहुत कम ग्रहण करते

हो और यही एक मुख्य कारण है कि क्यों शारीरिक विकास रुक जाता है। यह इसलिए कि तुम मितव्ययी हो जाते हो, तुम नष्ट नहीं करना चाहते, मन हस्तक्षेप करता है और शारीरिक ग्रहणशीलता बहुत हद तक कम हो जाती है। अन्त में, तुम बढ़ना बन्द कर देते हो - पर्याप्त वृद्धि के बाद, तुम बढ़ना बिलकुल बन्द कर देते हो! ...

*CWM Vol. 5, p. 208 (5 August 1953)* —श्रीमाँ

## उदारता की पहली अभिव्यक्ति

क्या तुमने नहीं ध्यान दिया है कि जब इतना बड़ा बच्चा (श्रीमां ऊंचाई का संकेत करती हैं) आ जाता है तब अन्य हर चीज रुक जाती है? इसके पहले, लोग बोलते रहते हैं, रुचिकर चीजें कहते हैं, कुछ ऊँची बातों में व्यस्त होते हैं; किन्तु जैसे ही एक बालक आ जाता है, हर व्यक्ति मुस्कुराने लगता है, बच्चे का स्वांग करने लगता है, उसे कुछ बोलने के लिए प्रेरित करता है, उसके साथ व्यस्त हो जाता है। उसके आते ही हर व्यक्ति उससे बात करना, उसे अपने पास लाना, उससे कुछ बोलवाना चाहता है। इसलिए स्वभावतः बालक अपने को विश्व का, आकर्षण का केन्द्र समझता है! यह बिलकुल स्वाभाविक है!

कुत्ते के बच्चे, बिल्ली के बच्चे के लिए भी यही बात है। यह एक तरह की ... कुछ ऐसी चीज की सुरक्षा की एक प्रकार की आवश्यकता की तुच्छ विकृति है जो अपने से छोटी हो। और यह अहंकार-शून्यता के अनेक रूपों में से एक, प्राचीनतम रूपों में से एक की अभिव्यक्ति है। जब यह किसी चीज की रक्षा कर सकती है, अपने से कोई छोटी चीज, दुर्बल चीज के साथ व्यस्त रहती है जो लगभग इसकी कृपा पर निर्भर है, लगभग पूरी तरह इसकी कृपा पर जिसमें विरोध की शक्ति नहीं हो तब कितनी सुखद अनुभव करती है। अतः व्यक्ति अपने को अच्छा और उदार अनुभव करता है क्योंकि वह उसे रौंद नहीं देता। यह विश्व में उदारता की पहली अभिव्यक्ति है। किन्तु यह सब, जब व्यक्ति इसके पीछे, और थोड़ा ऊपर देख सके, तुम्हें स्वार्थी होने से

बचाता है, क्योंकि सचमुच यह कितना हास्यास्पद है।

अतः एक अत्यन्त दीर्घ, दीर्घ पथ को पार करना है तभी कहीं अपने अहं को भगवान में विसर्जित कर पायेंगे।

*CWM Vol. 6, (7th July)* —श्रीमाँ

## उदार और कृपण

चीजों के नैतिक तथा आध्यात्मिक दृष्टिकोण के बीच अन्तर का एक उदाहरण लेकर देखें। सामान्य सामाजिक विचारधारा के अनुसार मनुष्यों के दो वर्गों - उदार तथा कृपण - के बीच भेद माना जाता है। कृपण व्यक्ति घृणित तथा बदनाम माना जाता है जबकि उदार व्यक्ति को निःस्वार्थ तथा समाज के लिए उपयोगी माना जाता है और उसके इस गुण के लिए उसकी प्रशंसा की जाती है। परन्तु आध्यात्मिक दृष्टि में वे दोनों एक ही स्तर पर माने जाते हैं। एक की उदारता तथा दूसरे की कृपणता दोनों एक उच्चतर, एक महानतर भागवत शक्ति की विकृतियाँ हैं। एक सत्ता है, एक भागवत गति है जो शक्तियों तथा चीजों को तथा जो भी इसके अधिकार में है उन्हें प्रकृति के सभी स्तरों पर सर्वथा भौतिक लोक से लेकर सर्वथा आध्यात्मिक लोक तक विस्तारित करती, विखेरती तथा मुक्त भाव से बाहर फेंकती है। उदार व्यक्ति तथा उसकी उदारता के पीछे आत्मा का एक ऐसा वर्ग-चरित्र है जो इस गति को व्यक्त करता है, वह व्यापक वितरण के लिए विकीर्णता की शक्ति है। एक दूसरी शक्ति है, दूसरी भागवत गति है जो एकत्र करती और संग्रह करती है। यह शक्तियों, चीजों तथा सभी सम्भव सम्पत्तियों को चाहे वे निम्नतर या उच्चतर लोकों के हों - बटोरती और पुंजित करती है। जिस व्यक्ति को तुम लालची कहते हो उसे इसी गति का एक यन्त्र बनाया गया था। दोनों महत्वपूर्ण हैं, सम्पूर्ण योजना में दोनों की आवश्यकता है - वह गति जो संचय करती है औऱ संकेन्द्रण करती है तथा जो विस्तारित करती है - दोनों की समान रूप से आवश्यकता है। दोनों यदि भगवान को सचमुच समर्पित हो जायें तब वे भागवत कार्य के लिए उनके यंत्र के रूप में समान रूप से उपयोगी होंगे।

परन्तु जब वे समर्पित नहीं हैं तब वे दोनों एक समान अज्ञान के आवेगों से नियन्त्रित होंगे। एक बिखेरने के लिए प्रेरित किया जाता है, दूसरा बटोरने के लिए। परन्तु दोनों अपनी-अपनी चेतना की अन्धकारमयी शक्तियों द्वारा चालित किये जाते हैं और दोनों के बीच चुनाव करने के लिए कुछ भी नहीं रहता। योग के उच्चतर बिन्दु से प्रशंसित उदार व्यक्ति को ऐसा कहा जा सकता है कि "तुम्हारी उदारता के सारे आवेग आत्मन की दृष्टि में मूल्यहीन हैं क्योंकि वे अहंकार और अज्ञान की कामना से आते हैं।" और दूसरी ओर जो कृपणता के लिए बदनाम किये जाते हैं, तुम कभी-कभी देख सकते हो कि वे प्रकृति द्वारा निर्धारित कार्य में एक शान्त संकेन्द्रित दृढ़ता के साथ धन संचय में लगे रहते हैं पर एक बार जाग्रत हो जाने पर भगवान के बहुत अच्छे यंत्र बन जाते हैं। परन्तु सामान्यतः कृपण व्यक्ति उदार व्यक्ति के समान ही अहंकार तथा कामना से ही प्रेरित होकर कार्य करता है, जो उसी अज्ञान का दूसरा पहलू है। दोनों को अपने आप का शुद्धीकरण तथा रूपान्तरण करना होगा तभी उनका किसी उच्चतर के साथ सम्पर्क हो सकता है जो उनके पीछे विद्यमान है।

*CWM Vol. 3, p. 119 (5 August 1929)* —श्रीमाँ

और सर्वोच्च दानशीलता में, जो लौकिक पुनरुज्जीवन के महान कार्य में समग्र आत्मदान है - सर्वप्रथम यह सत्य निहित है कि व्यक्ति जो चीज देना चाहता है उस पर वह अधिकार रख सकता है, यानी, व्यक्ति अपने आप का स्वामी हो।

केवल वही जिसमें पूर्ण आत्म संयम है पूरी सच्चाई के साथ महान कार्य में आत्म-निवेदित कर सकता है। क्योंकि केवल वही जानता है कि कोई विपरीत संकल्प, कोई अप्रत्याशित आवेग कभी नहीं आयेगा जो उसके अपने ही विरोध में उसकी क्रिया को रोक सके, उसके प्रयास में रुकावट डाल सके।

इस तथ्य में हम एक पुरानी कहावत का औचित्य पाते हैं जिसमें कहा गया है, "पहले घर में दीया जलाओ, फिर मन्दिर में।" (Charity begins at

home) यह लोकोक्ति हर तरह की अहमन्यता को प्रोत्साहित करती प्रतीत होती है, और फिर भी यह उसके लिए जो इसे ठीक से समझता है, एक महत् ज्ञान की अभिव्यक्ति है।

दानशील व्यक्ति इस बात से सहमत नहीं होते कि उनके प्रयास प्रायः व्यर्थ जाते हैं, कि उनकी सदेच्छा प्रायः अपने परिणामों में विकृत हो जाती है और कि अन्त में वे दान देना बन्द करने के लिए बाध्य हो जाते हैं, क्योंकि इसका ठीक से उपयोग नहीं किया गया। भ्रांति, कष्ट और मोहभंग का यही कारण है।

इस कहावत का स्पष्टतः गलत अर्थ लगाया जाता है जिसका तात्पर्य है - "पहले हमें धन, बुद्धि, स्वास्थ्य, प्रेम, सब प्रकार की ऊर्जा संचित कर लेना चाहिये, तभी हम इसे वितरित करेंगे।" क्योंकि, भौतिक दृष्टिकोण से संचय कब बन्द होगा? जो व्यक्ति इसे जमा करने की आदत बना लेता है उसे अपना अम्बार कभी काफी नजर नहीं आता।

इसके बारे में मुझे यह निष्कर्ष निकालना पड़ा कि अधिकांश व्यक्तियों में दानशीलता उनके आर्थिक स्रोतों के उलटे अनुपात में पायी जाती है। जिस प्रकार मजदूर, जरूरतमन्द और अभागे आपस में एक दूसरे की मदद करते हैं उन्हें देख कर मुझे यह राय बनानी पड़ी कि गरीब लोग कहीं अधिक दानशील होते हैं, अपने दुःखी साथियों की मदद करने के लिए धनी व्यक्तियों की अपेक्षा कहीं अधिक तैयार रहते हैं। मैंने जो देखा है उसके विस्तार में जाने का पर्याप्त समय नहीं है, किन्तु मैं विश्वास दिलाती हूँ कि इससे काफी शिक्षा मिलती है। जो भी हो, मैं विश्वास दिलाती हूँ कि यदि धनी वर्ग अपनी सम्पति के अनुपात में गरीबों की तरह दान करें, तब शीघ्र ही संसार में शायद ही कोई भूखा रहे।

सोना सोने को आकृष्ट करता है और इससे अधिक और कुछ घातक न होगा कि वितरण के पहले धन को संचित करते रहने की इच्छा बढ़ती रहे।

*CWM Vol. 2, p. 200* —श्रीमाँ

## प्रभु की अनन्त उदारता

समस्त प्रकृति तेरा अभिवादन करती है, हे प्रभु, और बाहें उठा कर और हाथ फैला कर वह तेरी प्रार्थना करती है। ऐसा नहीं है कि वह तेरी अनन्त उदारता पर सन्देह करती है और यह सोचती है कि कुछ प्राप्त करने के लिए उसे मांगना होगा, किन्तु यह तेरे सामने नतमस्तक होने और आत्म दान करने की उसकी यही विधि है, क्योंकि, क्या यह दान, ग्रहण करने के लिए तैयार होने की अपेक्षा, कुछ और है? वह इस प्रकार तुझे प्रार्थना निवेदित करने में आनन्द अनुभव करती है यद्यपि वह जानती है कि यह प्रार्थना अनावश्यक है। परन्तु यह एक उत्कट तथा सुखद आराधना है। और भक्ति का भाव इस प्रकार बौद्धिक चेतना को किसी तरह कष्ट दिये बिना सन्तुष्ट अनुभव करती है जो जानती है कि तू हर चीज के साथ एकात्म है और हर चीज में विद्यमान है।

CWM Vol. 1, p. 188 —श्रीमाँ

हरा रंग प्रसंग के अनुसार विविध चीजों की ओर संकेत करता है - भावनात्मक प्राण में यह भावनात्मक उदारता के एक विशेष रूप का रंग है, प्राण के अपने निजी स्वरूप में प्राणिक प्रचुरता या प्राणिक उदारता के साथ एक गतिविधि - प्राणिक भौतिक में यह स्वास्थ्य की एक शक्ति का परिचायक है।

*(Letters on yoga : Vision and Symbols)* — श्रीअरविन्द

## सात्विक दान

तपस्या के समान ही समस्त दान भी अज्ञानमय तामसिक, आडम्बरी राजसिक अथवा निष्काम और प्रबुद्ध सात्विक प्रकृति का होता है। तामसिक दान काल, स्थान, प्रयोजन की उचित स्थितियों पर विचार किये बिना अज्ञान में दिया जाता है। यह एक मूर्खतापूर्ण, अविवेकी और वास्तव में एक

स्वार्थपूर्ण गतिविधि है, एक अनुदार तथा अधम उदारता है, एक ऐसा दान है जो बिना सहानुभूति या सच्ची वदान्यता के, प्राप्तकर्ता की भावना का विचार किये बिना यहाँ तक कि उसकी स्वीकृति में तिरस्कार के बावजूद दिया जाता है। राजसिक प्रकार का दान वह है जो पश्चाताप करने के लिए अनिच्छा या आत्मपीड़न या व्यक्तिगत और अहंकारजनित उद्देश्य या प्राप्तकर्ता से बदले में किसी प्रकार का लाभ प्राप्त करने के प्रयोजन से किया जाये। सात्विक दान वह है जो उचित कारण तथा सद्भावना और सहानुभूति के साथ, काल तथा स्थान की उचित अवस्थाओं में उचित और योग्य प्रापक को दिया जाये जिसके लिए दान सचमुच उपयोगी हो। यह दान केवल दान और परोपकार की भावना से किया जाता है। इसमें प्राप्तकर्ता से पहले या बाद में किसी लाभ की भावना निहित नहीं होती और न इस कर्म में कोई अन्य व्यक्तिगत प्रयोजन होता है। सात्विक दान की विधि से अन्त में दूसरों को, विश्व को तथा भगवान को आत्म दान, आत्म समर्पण करने की भावना में उत्तरोत्तर वृद्धि होगी जो गीता द्वारा आदेशित कर्म यज्ञ का ऊँचा समर्पण है। और दिव्य प्रकृति में उत्कर्ष होगा आत्मदान की एक महानतम पूर्णता का जो अस्तित्व के विशालतम तात्पर्य पर आधारित होगी। यह समस्त नानाविध ब्रह्माण्ड की उत्पत्ति तथा इसका सतत सम्पोषण भगवान तथा उनकी शक्तियों के आत्मदान, और उनकी आत्मा के मुक्तहस्त से इन जगतों पर निःस्राव के कारण हो रहा है। वेद कहता है कि वैश्व सत्ता पुरुष का बलिदान है। पूर्णता-प्राप्त आत्मा की समस्त क्रिया भी अपने आप का और अपनी शक्तियों का सतत भागवत दान होगी, ज्ञान, ज्योति, बल, प्रेम, आनन्द, सहायक शक्ति का प्रवाह जो भगवान के अन्तर्गत इसके अधिकार क्षेत्र में हैं। तथा इसके परिवेश के लोग या इस विश्व के सभी लोग और इसके प्राणी उसके प्रभाव और प्रचुरता का ग्रहणशीलता की सामर्थ्य के अनुसार लाभ उठा सकेंगे। यह हम सब के अस्तित्व के प्रभु के प्रति आत्मा के पूर्ण आत्मदान का पूर्ण परिणाम होगा।

*Essays on the Gita, p. 490*

— श्रीअरविन्द

## उदारता एक शक्ति है

हाँ, सभी मानवीय गुण उस सत्य की विकृतियाँ हैं जो उनके पीछे विद्यमान है। वे सब जिन्हें तुम गुण कहो या दोष हमेशा कुछ ऐसी चीज की विकृति हैं जो उनके पीछे होती है और जो न यह है और न वह बल्कि कुछ दूसरी चीज है। परन्तु मैं कहती हूँ फिर भी उदारता के पीछे कौन-सा सत्य पाया जाता है : यह शक्तियों के छितराव की गति है। परन्तु ये शक्तियाँ छितरायें इसके पूर्व पहले उन्हें संकेन्द्रित होना होगा। अतः एक प्रकार के कम्पन की गति होती है : शक्तियाँ संकेन्द्रित होती हैं फिर वे विस्तारित होती हैं। और तब वे पुनः संकेन्द्रित होती हैं और फिर विस्तारित होती हैं। परन्तु यदि तुम हमेशा संकेन्द्रण के बिना ही विस्तारित होना चाहते हो तब कुछ समय के बाद तुम्हारे पास विस्तारित होने के लिए कुछ नहीं बच पाता। मैंने लिखा है कि धन एक शक्ति है, यह शक्ति के अतिरिक्त कुछ नहीं है। और इसीलिए किसी को व्यक्तिगत रूप से इसे रखने का अधिकार नहीं है, क्योंकि प्रकृति तथा विश्व की अन्य शक्तियों के समान यह केवल एक शक्ति है। यदि तुम प्रकाश को एक शक्ति मान लो तब कोई यह नहीं कहना चाहेगा कि "प्रकाश मेरा है" तथा न अपने कमरे में बन्द करके उसे रख लेगा और किसी को नहीं देगा। किन्तु धन के मामले में लोग इतने संवेदनशून्य हो जाते हैं और कल्पना करते हैं कि वे इसके मालिक हैं और इस पर उनका व्यक्तिगत अधिकार है। मैं उस धन की बात नहीं कर रही हूँ जो एक कागज के रूप में है, क्योंकि यह उस प्रकाश के समान होगा जो तुम लैम्प में जलाते हो। तुम लैम्प के मालिक हो सकते हो और इसलिए कह सकते हो, "यह मेरा प्रकाश है।" धन, तुम्हारे नोट्स, तुम्हारे चाँदी के टुकड़े - यह तुम्हारा धन है। परन्तु यह धन नहीं है। यह एक शक्ति है जो उन सब के पीछे है - आदान-प्रदान की शक्ति, जो धन है। वह किसी का नहीं है। यह सब का है। यह सिर्फ इसलिए जीवित है क्योंकि यह संचलन में है। यदि तुम इसका अम्बार लगाना चाहते हो तब यह नष्ट होने लगता है। यह ठीक वैसे ही है जैसे तुम जल को किसी पात्र

में हमेशा रखे रहो। कुछ समय के बाद जल बिलकुल सड़ जायेगा। धन के साथ भी वही बात है और लोग अब तक इसे समझ नहीं सके हैं। बाद में मैं इस विषय में लिखूंगी।

*CWM Vol. 5, p. 356* —श्रीमाँ

## समग्र उदारता

जब मैंने अमुक व्यक्ति को देखा तब उस समय अपने हाथ में 'समग्र उदारता' नाम का फूल मैं लिये थी। मैंने उसे समझाया कि 'समग्र उदारता' क्या चीज होती है। मैंने उसे कहा कि अहंकार के प्रभाव से व्यक्ति मुरझा जाता है, यह बुढ़ापे का कारण बन जाता है। यह तुम्हें सुखा देता है। व्यक्ति मुरझाये फूल के समान झुर्रीदार बन जाता है। और जब मैं उसे बता रही थी तभी अनुभूति आयी। अब जो कुछ मुझे याद है वह विचार है, किन्तु, विचार कुछ नहीं होता - उस समय अनुभूति ही थी।

मैं जानती हूँ कि किसी विशेष क्षण में मैं दो अवस्थाओं के बीच, व्यक्ति की व्यक्तिगत सत्ता, जो भगवान की ओर उन्मुख होती है, अपना संकल्प उद्घाटित करने के लिए उनकी याचना करती है और तब अपने को प्रसारित करके, उद्घाटित करती, विशाल बनाती, सृष्टि के साथ विलीन होती - भगवान का, परमोच्च का संकल्प बन जाती, - इन दोनों के बीच मैं अन्तर कर रही थी। तब उनसे याचना करने, उनका संकल्प जानने और अपने से अपरिचित जैसी चीज प्राप्त करने की अब आवश्यकता नहीं रहती - तुम वही संकल्प बन जाते हो।

उस क्षण वहाँ अनुभूति थी और यह पर्याप्त भावपूर्ण थी। और मैं उसे वही चीज बन जाने का जिसे तुम कौशल से करना चाहते हो उदाहरण दे रही थी और इसलिए क्योंकि तुम वही चीज बन गये हो - न केवल कौशल के पूर्ण ज्ञान का आनन्द तुम्हारे पास है बल्कि सहयोग का आनन्द भी (सहयोग नहीं : बल्कि उस चीज से सहभागिता जिसका उपयोग किया जा रहा है)

और यह लघु से लघु वस्तु से (उदाहरण स्वरूप वे वस्तुएं जिन्हें तुम क्रम में रखते हो) वैश्व रूपान्तरण तक जो भी नयी सृष्टि के साथ आती हैं - और यह सब सीमा के बन्धनों को उन्मूलित करने की वही गति होती है, विशालता की गति, उदारता की गति जो सीमाओं को तोड़ देती है। यह आरम्भ होता है आत्मदान से और समाप्त होता है तदात्मता में।

*Spiritual Significance of Flowers Ch. 6, p. 131* —श्रीमाँ

## मन की क्षमताएं तथा प्रकृति

मन तथा इसकी क्षमताओं की प्रकृति की शास्त्र में इस प्रकार व्याख्या की गई है :

'मन दस इन्द्रियों का स्वामी है और यह हृदय-कमल के केन्द्र में स्थित है। इसे अन्तःकरण भी कहा जाता है, क्योंकि इन्द्रियों के बिना, जहाँ तक बाह्य वस्तुओं का सम्बन्ध है - इसमें क्रिया करने की शक्ति नहीं होती - यानी यदि कान ध्वनि को नहीं सुनता, यदि त्वचा स्पर्श को महसूस नहीं करती अथवा यदि नेत्र रूप को नहीं देख पाता, यदि जिह्वा स्वाद महसूस नहीं करती या यदि नासिका गन्ध अनुभव नहीं करती तब मन किसी वस्तु की प्रकृति को जानने में असमर्थ रहता है। मन का प्रभुत्व सिर्फ इसी बात में रहता है कि जब इन्द्रियों को अपने-अपने प्रयोजनों पर निर्देशित किया जाता है तब मन उनका निर्णय करता है, मन परीक्षण करता है कि क्या अच्छा है, क्या बुरा है। मन के तीन गुण होते हैं - सत्व, रजस तथा तमस। इन्ही गुणों से सभी विभिन्न बदलती स्थितियाँ उत्पन्न होती हैं।

इन्हीं तीन गुणों के आधार पर मन की भी तीन अवस्थाएं होती हैं - सात्विक, राजसिक, तामसिक। सात्विक अवस्थाएं हैं संसार से विरक्ति, क्षमा, उदारता, तथा अन्य। राजसिक अवस्थाएं हैं - आवेग, क्रोध, लोभ, प्रयास तथा अन्य। तथा आलस्य, भूल, सुस्ती तथा अन्य तामसिक अवस्थाएं हैं। सात्विक अवस्थाएं सद्गुणात्मक कार्यों को प्रेरित करती हैं, राजसिक अवस्थाएं पाप

कर्म की ओर प्रेरित करती हैं तथा तामसिक अवस्थाएं शुभ-अशुभ किसी कर्म की ओर प्रेरित नहीं करतीं बल्कि जीवन को नष्ट कर देती हैं, वे कोई प्रयोजन सिद्ध नहीं करतीं।'

— श्रीअरविन्द

**श्रीअरविन्द सोसाइटी के प्रथम वार्षिक कांफ्रेन्स के लिए सन्देश**

- सच्चा धन वह है जिसे समुचित रीति से खर्च किया जाये।
- तुम सच्चे अर्थ में धनी तब बनते हो जब तुम अपने धन को यथासम्भव उत्तमोत्तम ढंग से खर्च करते हो। सम्पन्नता सिर्फ उसके साथ सतत बनी रहती है जो अपने धन को भगवान को अर्पित कर देता है ।
- निःस्वार्थ सम्पन्नता : जो व्यक्ति प्रचुर मात्रा में ग्रहण करता है वह जैसे ही ग्रहण करता है अपना सर्वस्व दे देता है।
- उदारता बिना मोल-तोल के अपने को दे देती है। सत्कर्म के लिए धन का प्रचुर मात्रा में आवागमन होता रहे।

*CWM Vol. 15, p. 49*

—श्रीमाँ

जब मैं कुछ नहीं जानता था, तब मैं दोषी, पापी और अपवित्र लोगों से घृणा करता था क्योंकि मैं स्वयं दोष, पाप और अशुद्धि से भरा था। परन्तु जब मैं शुद्ध, पवित्र हो गया और मेरी आँखें खुल गईं तब मैं अपने अन्तर में चोर और हत्यारे के सामने नतमस्तक हो गया तथा वेश्या के चरणों की पूजा की, क्योंकि मैंने देखा कि इन आत्माओं ने पाप के प्रचण्ड बोझ को स्वीकार किया है तथा विश्व-सागर से मथित विष के सर्वाधिक अंश को हम सब के लिए पी लिया है।

विचार और सूत्र, 132 श्रीअरविन्द

## 11
# समता या समत्वं या समचित्तता

**समता**

*निर्विकार शान्ति तथा अचञ्चलता*

*(श्रीमाँ द्वारा दिया गया पुष्प का आध्यात्मिक अर्थ तथा व्याख्या)*

*Botanical name:* Iberis

मैं नहीं समझती कि कोई व्यक्ति सदा अत्यधिक मुस्कुराता रह सकता है। कोई व्यक्ति जो यह जानता है कि सभी परिस्थितियों में कैसे मुस्कुराया जा सकता है, वह आत्मा की सच्ची समता के बहुत निकट होता है।

*CWM Vol. 14, p. 177* —श्रीमाँ

भौतिक शरीर में आनन्द : समस्त कामना तथा विकर्षण से मुक्त होकर पूर्ण समता तथा समर्पण में स्थित शरीर भागवत आनन्द के उपभोग के योग्य बन जाता है।

*CWM Vol. 14, p. 361* —श्रीमाँ

**विचार एवं सूत्र संख्या 34 :** हे दुर्भाग्य, धन्य है तू, क्योंकि तेरे माध्यम से मैंने अपने प्रेमी का मुखड़ा देखा है। यदि दुर्भाग्य के माध्यम से व्यक्ति भगवान को देखता है, तब फिर यह दुर्भाग्य कैसे हो सकता है?

*CWM Vol. 14, p. 361* —श्रीअरविन्द

**श्रीमाँ की व्याख्या :** स्पष्ट है, दुर्भाग्य कहना तो दूर यह तो वरदान है। और श्रीअरविन्द स्पष्ट रूप से यही कहना चाहते है। जब चीजें हमारी आशा के विपरीत घटती हैं, ऐसी चीजें जो हमारी कामनाओं के विपरीत होती हैं तब हम अज्ञानवश उन्हें दुर्भाग्य कहते हैं और पछताते हैं। परन्तु यदि हम थोड़ी बुद्धिमत्ता से काम लें और उन्हीं घटनाओं के अधिक गहरे परिणामों का निरीक्षण करें तब हम देखेंगे कि वे तेजी से हमें भगवान की ओर ले जा रहे हैं जो हमारे प्रेमी हैं। इसके विपरीत आसान और आरामदायक परिस्थितियाँ हमें मार्ग में व्यर्थ समय गंवाने के लिए उकसाती हैं, सस्ती खुशियों के फूल तोड़ने के लिए मार्ग में रुक जाने की प्रेरणा देती हैं और हम इतने दुर्बल होते हैं या इतने सच्चे नहीं होते कि उन्हें दृढ़तापूर्वक इनकार कर दें जिससे हमारी आगे की यात्रा में विलम्ब न हो।

व्यक्ति को इतना सबल होना चाहिये और अपने पथ पर इतनी दूर तक पहुँच जाना चाहिये कि उसे मार्ग की छोटी-छोटी सफलताओं और खुशियों की परवाह न हो। जो ऐसा कर सकते हैं, जो सबल हैं, वे सफलता के पीछे नहीं दौड़ते और उसे तटस्थ भाव से स्वीकार करते हैं। क्योंकि ये दुःख और दुर्भाग्य द्वारा किये गये प्रहार का महत्व समझते हैं।

परन्तु अन्त में सच्ची मनोवृति, इस बात का प्रमाण कि हम लक्ष्य के निकट हैं, एक समचित्तता का भाव है जो हमें सफलता और विफलता, सौभाग्य और दुर्भाग्य, दुःख और सुख को शान्त प्रसन्नता के साथ स्वीकार करने के योग्य बनाता है, क्योंकि ये सब चीजें ऐसे अद्‌भुत उपहार बन जाती हैं जो प्रभु अपनी अनन्त उत्सुकता में हम पर बरसाते हैं।

*CWM Vol. 10, p. 58* — श्रीमाँ

**विचार एवं सूत्र संख्या 93 :** पीड़ा हमारी माता का स्पर्श है जो हमें यह सिखाती है कि कैसे सहन करना और आनन्दातिरेक में विकसित होना चाहिये। उनकी शिक्षा के तीन चरण हैं, सहनशीलता प्रथम, दूसरा है आत्मा का समत्व भाव और अन्तिम है आनन्दातिरेक। — श्रीअरविन्द

**श्रीमाँ की व्याख्या :**

जहाँ तक नैतिक चीजों का सम्बन्ध है, यह बिलकुल स्पष्ट है, यह निर्विवाद है - समस्त नैतिक कष्ट तुम्हारे चरित्र का निर्माण करता है और आनन्द की ओर ले जाता है, जब तुम्हें यह मालूम हो कि इसे कैसे, किस मनोवृति से ग्रहण किया जाये। परन्तु जब यह शरीर से सम्बन्ध रखता है... यह सच है कि चिकित्सकों ने यह कहा है कि यदि व्यक्ति शरीर को कष्ट सहने का प्रशिक्षण दे तब यह अधिक से अधिक लचीला बन जाता है और कम आसानी से विघटित होता है - यह ठोस परिणाम है। जो लोग जानते हैं कि शरीर में कहीं दर्द होने पर कैसे क्षुब्ध नहीं हों और शान्तिपूर्वक उसे सहन कर लें, सन्तुलन बनाये रखें, तब ऐसे लोगों में बिना विघटित हुए रोग को सहने की शारीरिक क्षमता बढ़ती है। यह बहुत बड़ी उपलब्धि है। मैंने अपने आप से यह प्रश्न किया है बिलकुल व्यावहारिक, बाहरी दृष्टिकोण से और ऐसा ही होता हुआ मालूम पड़ता है। आन्तरिक दृष्टि से, मुझे अनेक बार ऐसा कहा गया है – छोटे दृष्टान्तों द्वारा कहा और दिखाया गया है – कि शरीर जितना हम सोचते हैं उससे अधिक सहन कर सकता है, यदि दर्द के साथ भय या चिन्ता न हो। यदि हम मानसिक घटक को हटा दें, क्या होगा इसकी चिन्ता और भय से मुक्त रहें, शरीर को अपनी हालत में छोड़ दें, तब यह अत्यधिक सहन करने की क्षमता रखता है।

दूसरा चरण है – जब शरीर ने सहने का निर्णय कर लिया है – तब शीघ्र ही दर्द की उग्रता लुप्त हो जाती है। मैं बिलकुल भौतिक दृष्टि से कह रही हूँ। और यदि तुम शान्त बने रहो, तब एक दूसरा घटक आ जाता है, आन्तरिक शान्ति की आवश्यकता – यदि तुम्हारे अन्दर आन्तरिक शान्ति है, तब दर्द लगभग सुखद संवेदन में बदल जाता है – सामान्य अर्थ में 'सुखद' नहीं, वरन् लगभग आरामदायक अनुभूति आ जाती है।

पुनः मैं बिलकुल भौतिक दृष्टि से ही कह रही हूँ। और अन्तिम चरण, जब कोषाणुओं को भागवत उपस्थिति तथा परम भागवत संकल्प में विश्वास हो, जब उनमें यह विश्वास हो कि सब कुछ शुभ के लिए होता है, तब परम

आनन्द आ जाता है। कोषाणु खुल जाते हैं, ऐसे, ज्योतिर्मय और आनन्दमय हो जाते हैं। इस प्रकार चार चरण बन जाते हैं - यहाँ केवल तीन का चित्रण है। अन्तिम चरण शायद हरेक व्यक्ति की पहुँच में नहीं है किन्तु प्रथम तीन बिलकुल स्पष्ट हैं - मैं इसी प्रकार से जानती हूँ। केवल एक चीज जो मुझे परेशान करती थी, वह थी कि यह विशुद्ध रूप से मनोवैज्ञानिक अनुभूति न थी और यह कि शरीर में दीर्घकालिक कष्ट के कारण कुछ छीजन आ गई थी। परन्तु मैंने चिकित्सकों से पूछा है और उन्होंने कहा कि यदि शरीर को बहुत तरुणावस्था में कष्ट सहन का प्रशिक्षण दिया जाये तब इसकी सहनशक्ति इतनी बढ़ जाती है कि यह सचमुच रोग का निवारण कर सकता है यानी रोग अपनी सामान्य प्रक्रिया से नहीं गुजर सकता, यह अवरुद्ध हो जाता है। यह महत्वपूर्ण है।

*CWM Vol. 10, p.168* —श्रीमाँ

**विचार एवं सूत्र सं 276 :** थियोसोफिस्ट अपनी परिस्थितियों में भ्रान्त हो गये किन्तु मूलभूत में ठीक हैं। यदि फ्रांसीसी क्रान्ति घटित हुई तब इसका कारण यह था कि भारत की बर्फीली चोटियों पर एक आत्मा ने भगवान को स्वाधीनता, समानता और भातृभाव के रूप में अपनी अन्तर्दृष्टि में देखा।

— श्रीअरविन्द

**श्रीमाँ की व्याख्या :** यह केवल यह दर्शाता है कि आत्मा की शक्ति सभी भौतिक शक्तियों से कहीं अधिक महान है। किन्तु सिद्धि के लिए दोनों अनिवार्य हैं।

*CWM Vol. 10, p.292* —श्रीमाँ

व्यक्ति तब तक पूर्ण नहीं बन सकता जब तक वह भगवान को वह सब कुछ जिसे वह अपना आप कहता है समर्पित नहीं कर देता। उसी तरह जब तक मानवजाति अपना सर्वस्व भगवान को समर्पित नहीं कर देती तब तक एक पूर्ण समाज की स्थापना नहीं हो सकती।

श्रीअरविन्द यहाँ स्पष्ट और सुनिश्चित ढंग से वही लिखते हैं जो मैंने

पहले कहने की कोशिश की। जब तक परम प्रभु की सत्ता या सरकार को मान्यता नहीं दी जाती और सर्वत्र तथा सभी चीजों में स्वीकार नहीं किया जाता तब तक किसी प्रकार की पूर्णता प्राप्त करना सम्भव नहीं है। स्वतंत्रता को केवल तभी अभिव्यक्त किया जा सकता है जब सभी लोग परम प्रभु की स्वतंत्रता को जानें। समानता तभी अभिव्यक्त की जा सकती है जब मनुष्य परम प्रभु के प्रति सचेतन बन जायें। भ्रातृत्व तभी अभिव्यक्त किया जा सकता है जब मनुष्य यह अनुभव करने लगें कि वे सब परम प्रभु से ही समान रूप से उत्पन्न हुए हैं और उनके एकत्व में वे सब एक हैं।

*CWM Vol. 10, p.305* —श्रीमाँ

*प्रश्न : एक मृग पानी पीने के लिए जंगल से गुजरता है, किन्तु यह कैसे प्रमाणित किया जा सकता है कि वह जंगल से गुजरा है? अधिकांश लोगों को कोई चिह्न नहीं मिलेगा; शायद वे यह भी न जानते हों कि मृग क्या होता है और जो लोग जानते भी हों वे यह न कह सकें कि वह उस मार्ग से गुजरा है। परन्तु वह व्यक्ति, जिसने शिकार करने का विशेष रूप से अध्ययन किया है, जो खोजी है, स्पष्ट चिह्न देख लेगा और यह कह सकेगा कि न केवल किस प्रकार का मृग था, बल्कि उसका आकार, उसकी आयु, लिंगभेद आदि भी बता सकेगा। उसी प्रकार ऐसे लोग अवश्य होंगे जिन्हें शिकारी के सदृश्य ही आध्यात्मिक ज्ञान हो, जो यह उद्घाटित कर सके कि अमुक व्यक्ति अतिमानसिक के साथ सम्पर्क में है जबकि सामान्य व्यक्ति, जिसने अपने मन को प्रशिक्षित नहीं किया है, इसे देखने में असमर्थ होगा। अतिमानसिक पृथ्वी पर अवतरित हो चुका है, ऐसा कहा जाता है, इसने अपने आप को अभिव्यक्त किया है। मैंने यह सब जो भी इस विषय पर लिखा गया है पढ़ लिया है, परन्तु मैं उन अज्ञानियों में से हूँ जो कुछ नहीं देख पाते, कुछ नहीं महसूस कर पाते। क्या कोई ऐसा व्यक्ति है जिसमें अधिक प्रत्यक्ष बोध हो जो मुझे यह कह सके कि किन चिन्हों से मैं यह जानूं कि व्यक्ति अतिमानसिक के साथ सम्पर्क में है?*

**श्रामाँ का उत्तर :** दो अकाट्य संकेत यह सिद्ध करते हैं कि व्यक्ति अतिमानसिक के साथ सम्पर्क में है:

१. एक पूर्ण सतत समचित्तता

२. ज्ञान में एक पूर्ण सुनिश्चितता

पूर्ण होने के लिए सभी परिस्थितियों, सभी घटनाओं, सभी सम्पर्कों में चाहे भौतिक हों या मनोवैज्ञानिक, चाहे उनकी प्रकृति और प्रभाव कुछ भी हो, अविच्छिन्न और सहज समचित्तता परम आवश्यक है।

तादात्म्य के द्वारा भ्रमातीत ज्ञान के विषय चरम और निर्विवाद निश्चयता।

*CWM Vol. 15, p. 102* —श्रीमाँ

भौतिक कठिनाइयाँ हमेशा समानता सिखाने तथा यह उद्घाटित करने के लिए आती हैं कि हमारे अन्दर कौन सी चीज इतनी शुद्ध और ज्योतिर्मय है कि हम अप्रभावित रह सकें। समानता में ही व्यक्ति को समाधान मिलता है। एक महत्वपूर्ण बिन्दु : समचित्तता का अर्थ उपेक्षा का भाव नहीं है।

*CWM Vol. 15, p. 138* —श्रीमाँ

## 5 दिसम्बर 1912

### श्रीमाँ की एक प्रार्थना

शान्ति और नीरवता में शाश्वत अभिव्यक्त होता है; तुम अपने को क्षुब्ध करने के लिए किसी चीज को स्वीकृति न दो और शाश्वत अभिव्यक्त हो जायेगा। सब कुछ के होते हुए भी पूर्ण समानता बनाये रखो और शाश्वत वहाँ होगा ... हाँ, हमें तेरे लिए अपनी खोज में आवश्यकता से अत्यधिक तीव्रता, अत्यधिक प्रयास नहीं करना चाहिये; प्रयास और तीव्रता तेरे सामने एक परदा बन जाते हैं ; हमें तेरे दर्शन की आकांक्षा नहीं करनी चाहिये; क्योंकि वह अभी भी एक मानसिक उत्तेजना है जो तेरी शाश्वत उपस्थिति को धुंधला बना

देती है ; सर्वाधिक पूर्ण शान्ति, निरभ्रता और समानता में ही समस्त तू बन जाता है ठीक वैसे ही जिस प्रकार तू समस्त है, और अल्पतम संवेदन इस पूर्ण विशुद्ध तथा अचंचल वातावरण में तेरी अभिव्यक्ति के लिए एक बाधा है। शीघ्रता नहीं, कोई अशान्ति नहीं, कोई व्यग्रता नहीं, तू, और कुछ नहीं केवल तू, बिना किसी विश्लेषण या वस्तुनिष्ठता के, और तू बिना सम्भव सन्देह के वहाँ विद्यमान हो जाता है, क्योंकि सब कुछ पवित्र शान्ति तथा पावन नीरवता में बदल जाता है। और यह संसार में सभी ध्यानों से कहीं अच्छा है।

*CWM Vol. 1, p. 10* —श्रीमाँ

*प्रश्न : मेरी मनोवृति क्या होनी चाहिये जिससे मुझे कोई भी चीज हानि न पहुंचा सके?*

उत्तर : पूर्ण अनासक्ति, समचित्तता, उदासीनता।

*CWM Vol. 17, p. 107* —श्रीमाँ

*प्रश्नः श्रीमां, गत रात्रि क मेरे पास आये। उनके काम के विषय में हमलोगों में लम्बी बातचीत हुई। ऐसा लगता है कि वे एक शान्त सन्तुष्टि के साथ गये। काश ! विषय पर जितनी अच्छी तरह बोल सकता हूँ उसका केवल आधा भी काम कर पाता, पर ऐसा नहीं होता। कभी-कभी मैं यह सोचकर डर जाता हूँ कि मेरे काम करने में रुचि कम होती जा रही है। यहाँ तक कि फलों से सम्बन्धित काम में भी पहले से मेरा उत्साह आधा से कम हो गया। हो सकता है मेरी रुचि कम होती जा रही है या मैं बूढ़ा हो रहा हूँ या उत्साह के बिना काम करना सीख रहा हूँ। सिर्फ आप जानती हैं।*

उत्तर : मैं इसे प्रज्ञा के अवतरण के रूप में देखती हूँ जो सच्ची समानता की ओर ले जाती है। आशीर्वाद।

*CWM Vol. 17, p. 287* —श्रीमाँ

*प्रश्न : बाह्य समानता तथा आत्मा की समानता में क्या अन्तर है?*

उत्तर : आत्मा की समानता मनोवैज्ञानिक वस्तु है। यह समस्त घटनाओं को, शुभ हो या अशुभ, बिना उदास हुए, बिना हतोत्साहित, निराश, क्षुब्ध हुए सहने की शक्ति है। कुछ भी हो जाये, तुम अविक्षुब्ध और शान्त बने रहते हो। दूसरी है शरीर में समानता। यह मनोवैज्ञानिक नहीं है, यह भौतिक है, यह भौतिक सन्तुलन को बनाये रखना है, बिना क्षुब्ध हुए शक्तियों को ग्रहण करना है। यदि व्यक्ति पथ पर प्रगति करना चाहता है तब दोनों आवश्यक हैं । और भी चीजें हैं – उदाहरण के लिए, मानसिक सन्तुलन ; इसे ऐसा होना चाहिये कि सभी सम्भव विचार, परस्पर विरोधी भी क्यों न हो, सभी दिशाओं से आने पर भी व्यक्ति विचलित न हो। व्यक्ति उनका निरीक्षण कर सकता है और प्रत्येक को यथास्थान रख सकता है। यह मानसिक सन्तुलन है।

*प्रश्न : मधुर माँ, यहाँ यह कहा गया है : एक पूर्ण समता तथा शान्ति और भौतिक तथा निम्न प्राणिक भागों में व्यक्तिगत मांग अथवा कामना से मुक्त पूर्ण निवेदन की स्थापना आवश्यक करणीय वस्तु है।*

उत्तर : ठीक है, तो क्या?

*प्रश्न : यह कैसे किया जा सकता है ?,*

उत्तर : तुम्हें यह कैसे करना चाहिये ? तुम्हें इसकी चाहना करनी होगी। फिर इसके लिए अभीप्सा ; और जब भी तुम इस आदर्श के विपरीत कुछ कर बैठो तब हर बार तुम्हें अपने सामने इसे रखना होगा और इस पर प्रकाश और परिवर्तन के लिए संकल्प का दबाव डालना होगा। हर बार जब व्यक्ति अहमात्मक गति करे या ऐसी चीज करे जो नहीं होना चाहिये तब तुरन्त ही उसे मानों पूंछ द्वारा पकड़ लेना होगा और फिर उसे अपने आदर्श तथा आगे बढ़ने के संकल्प के सामने रख कर उस पर प्रकाश और चेतना डालनी होगी जिससे यह रूपान्तरित हो सके।

हर चीज को जो नहीं करना चाहिये पकड़ लो, और तब इसे प्रकाश के सामने कस कर पकड़े रहना जब तक प्रकाश इसे रूपान्तरित करने के लिए क्रिया न करे । यह ऐसा कार्य है जिसे व्यक्ति हर समय कर सकता है।

कोई बात नहीं व्यक्ति किस प्रकार के काम में व्यस्त है, वह इस कार्य को हमेशा कर सकता है। हर बार जब भी व्यक्ति इस बात के प्रति सजग हो जाता है कि कुछ चीज है जो ठीक-ठाक नहीं चल रही है तब उसे हमेशा इस प्रकार पकड़ लेना होगा, उसे छिपने से रोकना होगा, क्योंकि यह छिपने की कोशिश करती है; इसे पकड़ लो और इस प्रकार अपने चेतन संकल्प के प्रकाश के समक्ष रखो और तब इसके ऊपर प्रकाश डालो जिससे यह परिवर्तित हो जाये।

*CWM Vol. 7, p. 174* —श्रीमाँ

जब तक तुम कुछ लोगों के पक्ष में और कुछ अन्य लोगों के विपक्ष में रहते हो तब तक तुम आवश्यक रूप से सत्य से बाहर रहते हो। तुम्हें सतत रूप से अपने हृदय में सद्भाव और प्रेम रखना चाहिये औऱ उन्हें सब पर शान्ति तथा समानता के साथ प्रवाहित होने देना चाहिये।

*CWM Vol. 13, p. 191* —श्रीमाँ

जब मैं अपने अन्दर झांकने का प्रयास करती हूँ मैं वहाँ एक ऐसी सत्ता को देखती हूँ जो हर चीज से अनासक्त है, एक विशाल तटस्थता का वहाँ राज्य है।

तटस्थता विकास का एक ऐसा चरण है जो आत्मा की समानता की ओर सुनिश्चित रूप से ले जायेगी।

*CWM Vol. 16, p. 171* —श्रीमाँ

*क्रम–विकास अभी समाप्त नहीं हुआ है। बुद्धि ही प्रकृति का अन्तिम तत्व नहीं है, न चिन्तनशील पशु ही उसकी सर्वोच्च रचना है। जैसे पशु में से मानव आविर्भूत हुआ, वैसे ही मानव में से अतिमानव प्रकट हो रहा है।*

विचार और सूत्र : 162 *श्रीअरविन्द*

## साधक के लिए चार आवश्यक चीजें

साधक का पहला कार्य है यह देखना कि क्या उसके अन्दर पूर्ण समता है, इस दिशा में वह कितनी दूर गया है या त्रुटि कहाँ है, और अपनी प्रकृति पर निरन्तर अपने संकल्प का प्रभाव डालना अथवा त्रुटि और इसके कारणों से मुक्ति के लिए पुरुष के संकल्प को आमंत्रित करना। उसके पास चार चीजों का होना आवश्यक है ; पहला, शब्द के सर्वथा ठोस व्यावहारिक अर्थ में समानता, समता, मानसिक, प्राणिक, भौतिक प्राथमिकताओं से मुक्ति, अपने चतुर्दिक और आन्तरिक समस्त भागवत कार्यप्रणालियों की समान रूप से स्वीकृति। दूसरा, सुदृढ़ शान्ति तथा सभी विक्षुब्धताओं तथा परेशानियों की अनुपस्थिति, तीसरा, एक सकारात्मक, आंतरिक आध्यात्मिक प्रसन्नता और स्वाभाविक सत्ता का आध्यात्मिक चैन जिसे कुछ भी भंग न कर सके, *सुखम्* ; चौथा, आत्मा का एक अमल आनन्द तथा हास्य जो जीवन और अस्तित्व को समाविष्ट करे। सम होने का अर्थ है अनन्त और वैश्व बन जाना, अपने को सीमित नहीं करना, मन, प्राण तथा इसकी आंशिक प्राथमिकताओं व कामनाओं के इस या उस रूप के साथ अपने को बांधना नहीं। परन्तु क्योंकि मनुष्य अपनी वर्तमान सामान्य प्रकृति में अपने मानसिक तथा प्राणिक रूपायनों द्वारा जीता है, अपनी आत्मा की मुक्ति में नहीं, - उनके प्रति तथा उनमें निहित कामनाओं, प्राथमिकताओं के प्रति आसक्ति भी उसकी सामान्य अवस्था है। उन्हें पहले स्वीकार करना अपरिहार्य होता है, उनसे परे जाना अत्यन्त कठिन होता है और शायद बिलकुल सम्भव नहीं जब तक हम अपनी क्रियाओं के मुख्य यन्त्र के रूप में मन को उपयोग में लाने के लिए बाध्य हैं। इसलिए पहली आवश्यकता है उनमें से कम से कम डंक को निकाल बाहर करना, उनके दृढ़तर आग्रह से, उनके वर्तमान अहंकार से, हमारी प्रकृति पर उनके अधिक उग्र दावे से, यदि वे डटे रहना चाहते हैं तब भी, वंचित कर देना।

*The Synthesis of Yoga , p. 721* — श्रीअरविन्द

# 12
# शान्ति

**शान्ति**

*सभी परिस्थितियों में हमेशा वही चाहना जो 'तू' चाहता है—यही है अटल शान्ति का आनन्द लेने का एकमात्र तरीक़ा*

*(श्रीमाँ द्वारा दिया गया पुष्प का आध्यात्मिक अर्थ तथा व्याख्या)*

*Botanical name:* Curcuma zedoaria

तुम किसलिए योग करना चाहते हो? क्या शान्तिके लिए? क्या शान्ति और अचंचलता के लिए? क्या मानवता की सेवा के लिए? इनमें से कोई भी प्रयोजन इस बात का संकेत देने के लिए पर्याप्त नहीं है कि तुम इस पथ के लिए अभिप्रेत हो। जिस प्रश्न का तुम्हें उत्तर देना है वह यह है : क्या तुम भगवान के लिए योग करना चाहते हो? क्या भगवान तुम्हारे जीवन के लिए परम तथ्य हैं, क्या इतने महत्वपूर्ण कि इनके बिना कोई काम नहीं चल सकता? क्या तुम यह महसूस करते हो कि तुम्हारे जीवन का समस्त प्रयोजन भगवान ही हैं और इनके बिना तुम्हारे जीवित रहने का कोई अर्थ नहीं है? यदि ऐसा है, तभी केवल यह कहा जा सकता है कि इस पथ के लिए तुम्हारे अन्दर एक पुकार है। यह पहली आवश्यक वस्तु है – भगवान के लिए अभीप्सा। दूसरी चीज जो तुम्हें करनी है वह है इसे बनाये रखना, इसे सदा

सतर्क, जाग्रत तथा जीवन्त बनाये रखना। और उसके लिए एकाग्रता की आवश्यकता होती है – भगवान के संकल्प और प्रयोजन के प्रति एक समग्र तथा नितान्त समर्पण के उद्देश्य से उन पर एकाग्रचित होना। हृदय में मन को एकाग्र करो। उसमें प्रवेश करो। गहराई में दूर तक जाओ जहाँ तक जा सकते हो। अपनी चेतना के सभी तारों को, जो चारों ओर फैले हैं, एकत्र करो, उन्हें लपेटो और छलांग ले लो तथा डूब जाओ। वहाँ हृदय की गहरी शान्ति में एक अग्नि प्रज्वलित है। यह तुम्हारे अन्दर दिव्यता है — तुम्हारी सच्ची सत्ता। इसकी आवाज सुनो, इसके आदेशों का अनुसरण करो। एकाग्रता के लिए अन्य केन्द्र भी हैं, उदाहरण स्वरूप, एक है सिर के ऊपर और दूसरा है भृकुटियों के मध्य का स्थान। इनमें से प्रत्येक का अपना लाभ है और विशेष प्रकार का परिणाम है। परन्तु केन्द्रीय सत्ता हृदय में रहती है और हृदय से ही सभी केन्द्रीय गतिविधियाँ — समस्त गत्यात्मकता तथा रूपान्तर के लिए प्रेरणा और सिद्धि की शक्ति — उत्पन्न होती हैं।

CWM Vol. 3, p. 1 —श्रीमाँ

## पीछे हटना

तुम लोगों में से अधिकांश अपनी सत्ता की सतह पर निवास करते हो और बाह्य प्रभावों के प्रति अनावृत रहते हो। तुम मानों अपने शरीर से बाहर लगभग प्रक्षिप्त रहते हो और जब तुम किसी अप्रिय सत्ता से, जो उसी प्रकार प्रक्षिप्त है, मिलते हो तब तुम विक्षुब्ध हो जाते हो। सारी समस्या इस बात से पैदा होती है कि तुम पीछे हटने के अभ्यस्त नहीं हो। तुम्हें हमेशा अपने अन्दर पीछे हटने का अभ्यास करना होगा — अपने भीतर गहराई में जाना सीखना होगा — पीछे हटो और तुम सुरक्षित रहोगे। सतही शक्तियों के प्रति जो बाहरी दुनिया में घूमती रहती हैं अपने को उद्घाटित न करो। यदि तुम कुछ काम करने की जल्दी में भी हो, तब भी कुछ क्षण के लिए पीछे हटो और तुम देखोगे कि कितनी शीघ्रता से तथा कितनी अधिक सफलता के साथ तुम्हारा काम हो सकता है। यदि कोई व्यक्ति

तुमसे क्रोधित है, तब तुम उसके स्पन्दनों से प्रभावित न होकर केवल पीछे हट जाओ और उसका क्रोध कोई प्रत्युत्तर न पाकर शान्त हो जायेगा। हमेशा अपनी शान्ति बनाये रखो और इसे खोने के समस्त लोभ का विरोध करो। पीछे हटे बिना कुछ भी निर्णय न लो, बिना पीछे हटे एक शब्द न बोलो, बिना पीछे हटे कुछ कार्य न करो, वे सब कुछ जो साधारण दुनिया से सम्बन्ध रखते हैं क्षणभंगुर होते हैं इसलिए इसके लिए परेशान होने की आवश्यकता नहीं है। जो शाश्वत है, अमर्त्य है और अनन्त है — वह अवश्य ही प्राप्त करने योग्य है, विजित और अधिकृत करने लायक है। वह है भागवत ज्योति, भागवत प्रेम, भागवत जीवन – यह परम शान्ति भी है, पूर्ण आनन्द और धरती पर पूर्ण प्रभुता भी है जिसकी पराकाष्ठा होगी सम्पूर्ण अभिव्यक्ति। जब तुम्हें वस्तुओं की सापेक्षता का बोध हो तब जो कुछ तुम्हारे साथ घटित हो तुम पीछे हट कर देखो; तुम स्थिर बने रहो और भागवत शक्ति को पुकारो और उत्तर की प्रतीक्षा करो। तब तुम्हें क्या करना है तुम ठीक-ठीक जान जाओगे। याद रखो, जब तक तुम बहुत शान्त न बने रहो, तुम उत्तर नहीं प्राप्त करोगे। उस आन्तरिक शान्ति का अभ्यास करो और तब तक अभ्यास करते रहो जब तक तुम्हारी आदत न बन जाये।

CWM Vol. 3, p. 160 —श्रीमाँ

*आपने उसी वार्ता में कहा था, 'अनेक बार शान्ति तुम्हें दी गई प्रायः तुमने इसे गवां दिया ...'*

हाँ, कितनी बार शान्ति तुम्हें दी गई और कितनी बार तुमने उसे खो दिया? अनगिनत बार, मैंने कहा है। भागवत शान्ति, केवल सामान्य शान्ति नहीं (क्योंकि सामान्य शान्ति के लिए, मेरा विश्वास है कि तुम सारी दुनिया में अनेक बार चक्कर लगा लो फिर भी नहीं मिलेगी) किन्तु भागवत शान्ति तुम्हें दी गई है और हर बार तुमने इसे खो दिया है। क्यों? क्योंकि तुम्हारे अन्दर कोई चीज अपनी तुच्छ स्वार्थपूर्ण दिनचर्या त्यागने से इनकार करती है।

तुम्हें यह नहीं भूलना चाहिये कि यह मैंने कब कहा था, हमलोगों का बारह

से सोलह व्यक्तियों का एक समूह था जो नियमित रूप से एकत्र होते थे और इन्हीं लोगों से मैं बात करती थी। मैंने कभी नहीं सोचा था कि मैं इसे पचास से भी अधिक व्यक्तियों के सामने पढ़ूंगी, कभी नहीं। किन्तु मैंने निश्चय ही उन्हें यह कहा था जो वहाँ थे उस छोटे से समूह में जिन्हें मैंने यह शान्ति अनगिनत बार दी थी और हर बार उन्होंने खो दी थी। यही मेरा तात्पर्य था, यह बिलकुल विशिष्ट या खास चीज थी। अब, उनके लिए जो यहाँ हैं आम तौर पर कोई कह सकता है जैसा कि तुम कहते हो कि शान्ति निरन्तर दी जाती है (चेतना, शक्ति, ज्ञान भी) कुछ सीमा तक, उतनी ही जितनी कि मन इसे ग्रहण करने के योग्य होता है। अतः ऐसा नहीं कहा जा सकता कि यह 'खो' गया है, किन्तु व्यक्ति इसके प्रति चेतन हो जाता है तब फिर अचेतन और फिर चेतन और फिर अचेतन ; ठीक उसी कारण से जैसा कि मैंने दिया है (क्योंकि यह हमेशा सच रहता है चाहे सोलह या अठारह या डेढ़ सौ या सात सौ व्यक्ति हों, कारण हमेशा वही होता है) - कि जबकि तुम्हारा इरादा ठीक होता है, सत्ता में कुछ चीज होती है जो बुरी तरह अपनी आदतों से चिपकी रहती है। लोग कल्पना करते हैं कि यदि उनकी बाहरी आदतों में कुछ परिवर्तन हुआ है तब वे बहुत प्रगति कर चुके हैं; वे तुम्हें कहते हैं, 'क्या तुम नहीं देखते? मैं यात्रा करता हूँ, मैं अपना पर्यावरण बदलता हूँ, परिस्थितियाँ बदलता हूँ और मैं बहुत तरह से अपने को अनुकूल बना लेता हूँ।' इन सबका कोई अर्थ नहीं। आन्तरिक आदतें, आन्तरिक प्रतिक्रियाएं, आन्तरिक दृष्टिकोण, सोचने, अपनी क्रिया को निर्देशित करने की विधि — यही सब परिवर्तन से इनकार करते हैं, इन्हें परिवर्तन कठिन लगता है।

CWM Vol. 4, p. 408 —श्रीमाँ

*जब आप शान्ति देने की बात कहती हैं तब क्या आप का तात्पर्य किसी विशिष्ट उपहार से होता है अथवा कुछ सामान्य अर्थ में?*

यह एक विशिष्ट चीज होती है, यह ऐसी चीज होती है जो तुम्हारे ऊपर रख दी जाती है, आग्रह के साथ, और तब, कुछ सेकेण्डों, या कुछ मिनटों या कुछ

घण्टों के लिए भी तुम इसे महसूस करते हो। तुम अचानक शान्ति, शक्ति, ज्योति - कभी-कभी कुछ अधिक बहुमूल्य चीजों से भी : ज्ञान, चेतना, प्रेम से परिपूर्ण महसूस करते हो। और तब यह लुप्त हो जाता है। तब तुम कहते हो, 'ओह! सचमुच ये दिव्य शक्तियाँ उदार नहीं होतीं। ये चीज का स्वाद इसलिए चखा देती हैं कि तुम देख सको कि यह कितना अच्छा है और तब तुमसे ले लेती हैं ताकि तुम इसकी और अधिक कामना कर सको!' यही सामान्य निष्कर्ष है। फिर भी हम सब उन कारणों को जानते हैं जो उस प्रदत्त शान्ति को बनाये रखने से रोकते हैं और हम सब इन बाधाओं से छुटकारा पाने का प्रयास करते हैं। और इस प्रकार तुम एक भयानक संघर्ष में उलझ जाते हो और शान्ति को और अधिक खो बैठते हो ... क्या तुम्हारा तात्पर्य यह है कि जब व्यक्ति सम्पर्क खो बैठता है तब प्रयास करने पर बाधा से मुक्त हो जाता है? यह तभी होता है जब तुम सचमुच प्रथम श्रेणी के साधक होते हो! ऐसा करनेवाले बहुत नहीं होते। जो ऐसा कर पाते हैं उन्हें मुझे बधाई देनी होगी, क्योंकि वे तेजी से प्रगति करेंगे। परन्तु ऐसे लोग बहुत नहीं हैं जो कारण जानते हों – मैंने तुम्हें यह बता दिया है कि - सौ में निन्यानबे बार बेचारे भगवान ही दोषी होते हैं : वे ही देते हैं और फिर वापस ले लेते हैं। वे बिलकुल सनकी हैं। वे अद्‌भुत फल का स्वाद चखा कर तुमसे वापस ले लेते हैं और जब उनकी मर्जी होती है तब पुनः तुम्हें वापस कर देते हैं ... सचमुच वे एक झक्की पात्र हैं।

CWM Vol. 4, p. 409 —श्रीमाँ

*शान्ति देने के बदले भगवान अहं को ही क्यों नहीं तुरन्त उन्मूलित कर देते?*

वह कार्य प्रत्येक व्यक्ति का है। यही बात मैंने तुम्हें उस दिन बतायी थी। मैंने श्रीअरविन्द का लिखा हुआ पढ़ कर सुनाया थाः 'यह अकर्मण्य भ्रान्ति मन में न पालो कि तुम्हें अभीप्सा दी जायेगी और तुम्हारे लिए कार्य कर दिया जायेगा।' अभीप्सा आवश्यक रूप से तुम्हारी ओर से आनी चाहिये और अहं का उन्मूलन भी। तुम्हारी मदद की जाती है, तुम्हें सहारा दिया जाता है; जब

भी तुम एक कदम आगे बढ़ते हो तुम महसूस करोगे कि कुछ चीज है जो तुम्हें वे सब चीजें देती है जो आगे कदम बढ़ाने में तुम्हारे लिए आवश्यक होती हैं। परन्तु कदम तुम्हें ही बढ़ाना होगा, तुम्हें कोई भी अपनी पीठ पर लाद कर नहीं ले जायेगा ... पहले अहं को हटाओ, यह अद्‌भुत कार्यक्रम है। एक बार अहं का उन्मूलन हो जाये, तब और अधिक कुछ करना शेष नहीं रह जायेगा, सब काम समाप्त हो जायेगा, क्योंकि अहं ही स्पष्ट रूप से भगवान के साथ सम्पर्क में आने से तुम्हें रोकता है। एक बार अहं चला जाये तब तुम बड़ी आसानी से भगवान के साथ एक आनन्दमय एकता अनुभव करोगे और तब सारा कार्य ही सम्पूर्ण हो जायेगा। परन्तु व्यक्ति सामान्य रूप से अन्त से आरम्भ नहीं करता। फिर भी, जो अभी मैंने तुम्हें कहा है वह सही है : अहं को हटाना तुम्हारा कार्य है। तुम्हारी सहायता की जायेगी परन्तु तुम्हें अपने पैरों से चलना होगा। बिलकुल यह आशा न करो कि कोई तुम्हें अपनी पीठ पर लाद कर ले जायेगा औऱ तुम्हें कुछ न करना पड़ेगा सिवा इसके कि तुम अपने को लाद लिये जाने दो।

CWM Vol. 4, p. 410 —श्रीमाँ

भगवान के दो पक्ष हैं – निष्क्रिय शान्ति तथा गत्यात्मक शक्ति। अन्त में ये संयुक्त हो जाते हैं।

Letters on Yoga, p. 47 —श्रीअरविन्द

जब आन्तरिक सत्ता एक बार अपनी पृथक्कता पूर्ण रूप से स्थापित कर लेती है तब तमस का सागर भी इसे एक साथ बनाये रखने से रोक नहीं सकता। योग में एक सुरक्षित आधार बनाने के लिए, पृथक्कता को पूर्णतः स्थापित करना पहली चीज है। यह अधिकांशतः प्रायः तभी होता है जब शान्ति सभी आन्तरिक भागों में पूर्णतया सुदृढ़ हो जाती है। तब पृथक्कता भी दृढ़ और स्थायी बन जाती है।

Letters on Yoga, p. 92 — श्रीअरविन्द

प्रत्येक व्यक्ति में मन, प्राण, शरीर की चेतना सामान्य रूप से अपने आप में ही बन्द रहती है, यह संकीर्ण होती है, विशाल नहीं होती, प्रत्येक चीज का केन्द्र अपने आप को ही समझती है, सभी चीजों का निर्णय अपनी ही राय के अनुसार करती है – यह किसी चीज को भी उस रूप में नहीं जानती जैसी वास्तव में वह होती है। परन्तु जब व्यक्ति योग के द्वारा सच्ची चेतना के प्रति उद्घाटित होना आरम्भ करता है तब यह बाधा टूटने लगती है। व्यक्ति अनुभव करने लगता है कि मन विशाल बन रहा है, अन्त में भौतिक चेतना भी विशालतर बनती जाती है और अन्त में तुम सभी चीजों को अपने अन्दर, अपने को सभी चीजों के साथ अनुभव करते हो। तुम तब श्रीमाँ की वैश्व चेतना के साथ एक हो जाते हो। इसलिए तुम मन को विशाल होते हुए अनुभव करते हो। परन्तु मानव मन के ऊपर भी बहुत कुछ है और इसी को तुम अपने सिर के ऊपर एक विश्व के समान अनुभव करते हो। हमलोगों के योग के ये सामान्य अनुभव हैं। यह केवल एक आरम्भ है। परन्तु इसके निरन्तर विकास के लिए तुम्हें अधिक से अधिक स्थिर होना होगा, बिना अधिक उत्सुक तथा उत्तेजित हुए जो कुछ आता है उसे पकड़ कर रखने के अधिकाधिक योग्य बनना होगा। शान्ति और अचंचलता पहली चीज है और इसके साथ विशालता - शान्ति में जो भी प्रेम या आनन्द आता है, जो भी शक्ति या जो भी ज्ञान आता है उसे तुम धारण कर सकते हो।

Letters on Yoga, p. 100 — श्रीअरविन्द

दर्शन शास्त्र शान्ति तथा नीरवता के बारे में या आन्तरिक और ब्राह्य प्राण के विषय में कुछ नहीं जानता। इन चीजों का अनुसन्धान केवल योग के द्वारा किया जाता है।

Letters on Yoga, p. 321 — श्रीअरविन्द

जब व्यक्ति आन्तरिक सत्ता को अनुभव करने लगता है और इसमें निवास करने लगता है (इसका परिणाम होता है शान्ति और नीरवता) तब सामान्य कालबोध लुप्त हो जाता है अथवा पूर्ण रूप से बाह्य बन जाता है।

Letters on Yoga, p. 404 —श्रीअरविन्द

शान्ति अपरिमित, स्थिरता गहरी और निश्चल, अचंचलता अविचल तथा भगवान में श्रद्धा सदा-वर्धनशील होनी चाहिये।

***

स्थिर, सुदृढ़ तथा सतत शान्ति द्वारा ही वास्तविक विजय उपलब्ध की जा सकती है।

***

प्रशान्ति और शान्ति में ही व्यक्ति जान सकता है कि करने योग्य सर्वोत्तम चीज क्या है।

***

सच है कि शान्ति की अत्यधिक आवश्यकता है – शान्ति के बिना आसान से आसान वस्तु भी तुरन्त बात का बतंगड़ बना देती है।

***

तुम कहीं भी शान्ति नहीं प्राप्त कर सकते जब तक तुम अपने हृदय में शान्ति नहीं प्राप्त कर लेते।

CWM Vol. 14, p. 138 – श्रीमाँ

***

*अचंचलता एक ऐसी अवस्था है जिसमें कोई बेचैनी अथवा क्षुब्धता नहीं होती।*

*स्थिरता निश्चेष्ट अचल अवस्था है जिसे कोई उपद्रव प्रभावित नहीं कर सकता। यह अचंचलता से अधिक सकारात्मक अवस्था है।*

*शान्ति उससे भी अधिक सकारात्मक अवस्था है । इसमें निहित है एक स्थापित तथा सामंजस्यपूर्ण विश्रांति तथा मुक्तिका भाव।*

*निश्चल – नीरवता एक ऐसी अवस्था है जिसमें मन, प्राण की कोई गतिविधि नहीं होती अथवा ऐसी गंभीर अचलता होती है जिसमें कोई सतही हलचल प्रवेश नहीं कर सकती ।*

*पूर्ण योग और इसकी साधना पद्धति, 112* *श्रीअरविन्द*

## माताजी का प्रतीक

*The central circle represents the Divine Consciousness.*

*The four petals represent the four powers of the Mother.*

*The twelve petals represent the twelve powers of the Mother manifested for Her work.*

केन्द्रीय वृत्त 'भागवत चेतना' का प्रतीक है।

चार पंखुड़ियां माता की चार शक्तियों की प्रतीक हैं।

बारह पंखुड़ियां माता की बारह शक्तियों की जो उनके काम के लिए अभिव्यक्त हुई हैं।

*

केन्द्रीय वृत्त परम जननी, 'महाशक्ति' का प्रतीक है।

चार केन्द्रीय पंखुड़ियां मां के चार रूप हैं—और बारह पंखुड़ियां, उनकी बारह कलाएं।

ISBN No.: 978-81-7060-433-4
Rs. 200/-